श्रीनेमिनाथाय नमः ।

सद्बोध रत्नाकर— * प्रथम रत्न ।

प्रद्युम्न-चारित्र ।

अर्थात्

जगद्विख्यात् यादववंशतिलक महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजी के श्रेष्ठ पुत्र श्रीप्रद्युम्नकुमार का संक्षिप्त चरित्र ।

लेखक

बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए., लखनऊ.

प्रकाशक

श्रीमूलचन्द्र जैन मैनेजर व मालिक—सद्बोधरत्नाकर कार्यालय, सागर

प्रथमावृत्ति २००० } १९१४ { मूल्य ८ आने

Printed by U. C. Banerji at the Anglo-Oriental Press, Lucknow.

समर्पण ।

हिंदी भाषा के परम हितैषी सज्जनोत्तम

श्रीयुत पंडित नाथूरामजी प्रेमी

के

करकमलों में लेखक द्वारा

यह पुस्तक सादर

समर्पित हुई ।

प्राय: यह एक नियम है कि समय २ पर लोगों के विचार, उनकी रुचि और उनके भाव बदलते रहते हैं। जहां और विषयों में यह परिवर्तन होता है वहां साहित्य तथा पाठ्य पुस्तकें भी इस नियम से वंचित नहीं रहतीं। कभी किसी विषय को विस्तारित रूप से ही पढ़ने में आनंद आता है और कभी उसी को अति संक्षेप रूप में देखने को जी चाहता है।

कुछ समय पहिले पौराणिक शास्त्रों की इतनी भरमार थी और उनके पढ़ने की इतनी रुचि और उत्कंठा थी कि पौराणिकों ने छोटी २ कथाओं को भी एक बड़े आकार में पाठकों की भेंट करना उचित समझा था, परंतु वर्तमान में प्रथम तो पौराणिक शास्त्रों पर लोगों की श्रद्धा ही नहीं रही और यदि साहित्य प्रचार के लिए अथवा कथा भाग जानने के लिए किंवा जन साधारण को पुण्य, पाप का फल दर्शाने के लिए कुछ शौक़ भी है तो छोटी सी छोटी कथाओं के बड़े २ पोथों को देखकर जी घबरा जाता है। अतएव यह अत्यावश्यक है कि बड़े २ प्राचीन पुराणों को उन में से अत्युक्तियां तथा व्यर्थ के अलंकारादि आडम्बर निकालकर छोटे रूप में लाया जाए।

इसही अभिप्राय से हम ३५० पृष्ठों के श्रीसोमकीर्त्ति आचार्य कृत प्रद्युम्नचरित्र को संक्षिप्त करके पाठकों की भेंट करते हैं।

इसमें जगद्विख्यात् यादववंश तिलक शिरोमणि श्री कृष्ण नारायण के श्रेष्ठ पुत्र कामदेव प्रद्युम्नकुमार का चरित्र संक्षेप में दिया गया है। कामकुमार किस कुल में उत्पन्न हुआ, उसके माता पिता कैसे तेजस्वी, प्रतापी और विभवशाली थे। उसका किस प्रकार उत्पन्न होते ही हरण होगया, भारी शिला के नीचे दबाया गया, राजा कालसंवर के यहां जाकर बड़ा हुआ, अनेक लाभ और विद्याओं को प्राप्त किया, ब्रह्मचर्य व्रतको स्थिर रक्खा, शत्रुओं का दमन किया, दुष्ट माता का भी आदर किया, अपने शहर में लौटकर अपनी माता की सौत से बदला लिया, यादवों को अपने अपूर्व बलका परिचय दिया, अंत में संसार को असार जानकर घोर तपश्चरण किया और केवल ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष पदको प्राप्त किया आदि ३० परिच्छेदों में कुल ग्रंथ समाप्त किया गया है। कथा बड़ी मनोरंजक और आश्चर्यजनक है। प्रत्येक स्त्री पुरुष इसे पढ़कर कुछ न कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

हमने इसको अपने परमप्रिय मित्र श्रीयुत नाथूराम जी प्रेमी के हिंदी अनुवाद के आधार पर लिखा है और सर्वत्र उन की वाक्य रचना तथा लेख शैली का अनुकरण किया है जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

आशा है कि इस विषय में हमारा यह नवीन साहस पाठकों को रुचिकर होगा। यदि यह पसंद आया तो हम बहुत शीघ्र कृष्ण चरित्र तथा अन्य उत्तम२ पुरुषों के चरित्र पाठकों की भेंट करेंगे।

लखनऊ
१२-२-१४

दयाचन्द्र गोयलीय।

* श्रीः *

प्रद्युम्न चरित्र

* पहिला परिच्छेद *

प्राचीन काल से भारत वर्ष में द्वारका नगरी प्रसिद्ध है। विश्वविख्यात कृष्ण नारायण वहीं के अधिपति थे। वे बड़े प्रतापी, पराक्रमी और शूरवीर राजा थे। उन्होंने बाल्यावस्था में ही कंसादि शत्रुओं का विनाश किया था। गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसके नीचे गाय के बछड़ों की रक्षा की थी। यमुना नदी में काले नागको नाथा था। जरासिंधु के भाई अपराजित को संग्राम भूमि में नष्ट किया था। उनके बल को देख कर मनुष्यों की तो क्या बात, देवता भी थर थर काँपते थे। सत्यभामा उनकी पट्टरानी थी, जो पति के समान सर्व गुण सम्पन्न थी; और जिसके रूप लावण्य को देखकर देवाङ्गनाएँ भी शर्माती थीं।

कृष्ण महाराज जिन धर्म के सच्चे भक्त और उपासक थे। पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से अनेक प्रकार की राज्य विभूति और धन धान्यादिक सम्पदा को भोगते हुए भी

सम्यक्त से विभूषित होने के कारण संसार को केले के स्तंभ के समान निःसार जानते थे और सदैव कर्त्तव्य पालन में दत्तचित्त रहते थे।

❋ दूसरा परिच्छेद ❋

एक दिन राज्य विभूति से मण्डित, कृष्ण महाराज बंधुवर्गों की एक बड़ी सभा में विराजे, अनेक विषयों पर वार्तालाप कर रहे थे। इतने में कोपीन पहिने, जटा रखाये और हाथ में कुशासन लिये हुए नारद मुनि आकाश मार्ग से गमन करते हुए दिखलाई दिये। उनको आया देखकर सर्व सभा के सज्जन खड़े हो गये और कृष्ण जी ने सन्मान पूर्वक आदर सत्कार करके उनको अपने सिंहासन पर बिठाया और भक्ति भाव से कहने लगे कि हे महाभाग्य मुनि! यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आपने अपने चरण कमलों से मेरे घर को पवित्र किया और अपने शुभागमन से मुझे भाग्यशाली बनाया। इस प्रकार उनकी प्रशंसा करके कृष्ण जी दूसरे सिंहासन पर बैठ गये। नारदजी ने उत्तर दिया—राजन्! जिनेन्द्र बलदेव, नारायणादि पुरुषोत्तम ही दर्शन करने योग्य होते हैं, यदि मैं उनसे भी न मिलूं तो फिर मेरा जन्म ही निष्फल है। इस प्रकार कुछ

समय तक परस्पर प्रेम संवाद होता रहा और नारद जी देश देशान्तरों के समाचार सुनाते रहे।

तदनंतर यह देखने के लिये कि कृष्ण जी की रानियां उनके समान विनयवान और उदार चित्त हैं या नहीं, नारद जी जो पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं और जिनके शीलव्रत पर किसी को भी संशय नहीं होता, कृष्णजी की आज्ञा पाकर, उनका अंतःपुर देखने के लिये भीतर गये। सबसे पहिले सत्यभामा के महल में पहुँचे। उस समय सत्यभामा दर्पण आगे रक्खे हुए वस्त्राभूषण पहन रही थी और उसका चित्त दर्पण में ऐसा लग रहा था कि उसे यह मालूम भी नहीं हुआ कि नारद जी आए हैं। नारद जी धीरे से उसकी पीठ के पीछे खड़े हो गये। जब उनके भस्म से लिपटे हुए और जटा से भयंकर दीखने वाले मुख का प्रतिबिम्ब सत्यभामा ने अपने मुख के समीप देखा, तो उसने अपना मुख तिरस्कार की दृष्टि से बिगाड़ लिया। इस तिरस्कार की दृष्टि को ज्यों ही नारद जी ने देखा, वे क्रोध के मारे लाल पीले होगए और 'इस दुष्टनी के महल में क्यों आए' इसका पश्चाताप करते हुए अन्तःपुर से निकलकर कैलाश गिरि की ओर चलदिए। वहां पहुँचकर "सत्यभामा से कैसे बदला लूं" इसपर विचार करने लगे। नाना प्रकार के भाव मन में पैदा होते थे, कभी

जी चाहता था कि किसी के सामने इसकी सुंदरता का वर्णन करके इसका हरण करा दूं, कभी जी में आता था कि सत्यभामा को माया विशेष से किसी पर पुरुष में आसक्त दिखाकर कृष्णजी को इस से विमुख कर दूं, परंतु इन बातों को कृष्ण जी के दुख का कारण जानकर उन्हों ने अंत में यह उपाय सोचा कि स्त्रियों को जैसा सौत का दुख होता है ऐसा किसी का नहीं होता। अतएव अढ़ाई द्वीप की भूमि में विचर कर किसी सुंदर कन्या की खोज करनी चाहिये। इसी खोज में नारद जी सर्वत्र भ्रमण करने लगे, किंतु कहीं भी ऐसी कन्या न मिली जो सुंदरता में सत्यभामा की समानता कर सके। इस से नारद जी को बड़ा खेद हुआ।

❀ तीसरा परिच्छेद ❀

एक दिन चलते २ कुण्डनपुर नगर में पहुँचे। वहां भीष्म नाम का राजा राज्य करता था। नारदजी को सभा में आया देखकर राजा भीष्म ने यथोचित उनका आदर सत्कार किया और उनके शुभागमन से अपने को बड़ा पुण्यवान समझा। नारदजी ने राजकुमार को जो उनके सामने बैठा था अत्यन्त सुंदर रूपवान देखकर विचार किया कि यदि इसकी बहिन होगी तो

वह भी इसके समान सुंदर होगी। यह सोचकर थोड़ी देर के पश्चात् उन्होंने अन्तःपुर देखने की इच्छा प्रगट की। राजा ने प्रसन्नता से उत्तर दिया, बहुत अच्छा, आप मेरे महल को पवित्र कीजिये। तब नारद जी महल में गए। राजा की बहिन ने उनका बड़ा सन्मान किया और तमाम रानियों ने उनके चरणों में पड़कर शीश नवाया। नारदजी ने सबको आशीर्वाद दिया। राजकुमारी रुक्मणी भी वहीं खड़ी थी। उसे देखते ही नारदजी ने पूछा, यह बालिका किसकी है? राजा की बहिन ने उत्तर दिया कि यह महाराज भीष्म की पुत्री है। कुमारी ने मुनि को प्रणाम किया। नारदजी ने उसे ऐसा आशीर्वाद दिया कि "पुत्री तू श्रीकृष्ण की पट्ट-रानी हो"। यह सुनकर रुक्मणी अपनी भुवा की ओर देखने लगी। भुवा ने पूछा, महाराज! श्रीकृष्ण कौन है? वे कहां रहते हैं? उनका वृत्तांत कहो। नारदजी बोले, बहिन! कृष्ण जी द्वारका के राजा हैं। वे हरिवंश के शृङ्गार और यादवों के भूषण हैं। अनेक राजा उनके आधीन हैं। वे बड़े धीर वीर और ऐश्वर्यवान हैं और नारायण के नाम से विख्यात हैं। यह सुनकर रुक्मणी को बड़ा आश्चर्य हुआ और अपनी भुवा से कहने लगी कि यह कैसे सम्भव है, पिताजी ने तो मुझे शिशुपाल राजा को देनी कर रक्खी है। भुवा ने उत्तर दिया,

नहीं बेटी तू नारदजी के वचनों का विश्वास कर। पहिले एक मुनि महाराज ने भी यही कहा था। तेरे माता पिता ने तुझे शिशुपाल को देनी नहीं की है, वरन् तेरे भाई ने कह दिया है, सो संसार में माता पिता की ही दी हुई कन्या दूसरे की कही जाती है, तू चिंता मतकर, तू निस्संदेह कृष्ण जी की प्राणवल्लभा होगी, मैं ऐसा ही उपाय रचूंगी। इन शब्दों को सुनकर रुक्मणी मन में फूली नहीं समाई और उसके आनंद का पार न रहा।

तदनंतर, वारम्वार अनेक प्रकार से कृष्णजी की प्रशंसा करके और उन्हें रुक्मणी के हृदय में विराजमान करके, नारद जी वहां से कैलाश पर्वत को रवाना हो गए। वहां जाकर उन्हों ने रुक्मणी के रूप का एक चित्र पट बनाया, और उसे लेकर श्रीकृष्णजी के पास पहुँचे।

❋ चौथा परिच्छेद ❋

वार्तालाप करते समय नारद जी ने अवसर पाकर कृष्णजी को वह चित्रपट दिखलाया। उसे देखते ही कृष्णनारायण चकित हो गए। और उस पर ऐसे मोहित हुए कि तन वदन की कुछ सुधि न रही। बहुत देर के बाद नारद जी से पूछा कि स्वामिन्! यह चित्र किसका है, इसे देखकर मेरा मन कीलित हो गया है। ऐसी

सुन्दरी तो मैंने कभी नहीं देखी। नारद जी ने उत्तर दिया राजन्! मैं सर्वत्र घूम आया, परन्तु मेरे देखने में कोई ऐसी सुंदर मनोहर स्त्री नहीं आई। यह महाराज भीष्म की पुत्री, रूपलावण्य की खानि रुक्मणी का चित्र है। संसार में आप का अवतार लेना तभी सार्थक होगा जब रुक्मणी से आपका घर सुशोभित होगा। कृष्णजी ने पूछा, यह बाला विवाहिता है या कुँवारी? नारदजी ने उत्तर दिया कि राजन्! कुँवारी है, किंतु इस के भाई ने इसे राजा शिशुपाल को देनी कर रक्खी है, अतएव रुक्मणी के लिए आप को राजा शिशुपाल से युद्ध करना होगा। यह सुनकर कृष्ण जी कुछ उदास हो गए, किंतु नारदजी ने उनका साहस बंधाकर और उनको तरह २ के वाक्यों से मोहित करके अपने स्थान को पयान किया। उनके जाते ही श्रीकृष्ण एकदम मूर्छित होगए, अनेक शीतोपचार करने से सचेत हुए; परंतु वे रातदिन रुक्मणि के प्रेम में ही आसक्त रहने लगे और सब काम काज भूल गए।

❋ पांचवाँ परिच्छेद ❋

थोड़े दिनों के पश्चात् रुक्मणी को यह जानकर कि राजा शिशुपाल ने मेरे साथ विवाह करने के लिए लग्निपत्र शुधवाया है और विवाह की तिथि भी नियत करली है, बड़ा खेद हुआ। वह अपनी

भुआ के आगे रोने लगी और उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि यदि कृष्णजी का मेरे साथ सम्बंध न हुआ तो मैं कदापि जीवित न रहूँगी। यह सुनकर भुआ ने उसे धैर्य्य दिया और तत्काल अपने एक दूत को तमाम रहस्य की बात कह कर तथा एक प्रेमपत्र देकर कृष्णजी के पास रवाना किया। उस ने जाकर रुक्मणी का सारा हाल कह सुनाया और निवेदन किया कि महाराज, आप शीघ्र कुण्डनपुर के प्रमद वन में पधारें, वहां आप को रुक्मणी मिलेगी। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है कि यदि आप के दर्शन न होंगे तो मैं प्राण त्याग दूंगी। आप निश्चय जानिये, आप के सिवाय वह बाला दूसरा पति कदापि न करेगी। यह सुन कर कृष्णजी ने उसे वस्त्राभूषण देकर विदा कर दिया और आप बल्देव सहित जो वहां पर मौजूद थे गुप्त रीति से रथ में सवार होकर कुण्डनपुर की ओर चल पड़े। वे बहुत शीघ्र प्रमद उद्यान में पहुंच गए और सघन वृक्षों में एक जगह छिप कर बैठ गए।

❀ छठा परिच्छेद ❀

इसी समय राजा शिशुपाल ने जिसे नारद जी ने डरा दिया था, बहुत बड़ी सेना के साथ कुण्डन पुर को चारों ओर से घेर लिया जिसके कारण रुक्मणी का प्रमद वन में जाना कठिन होगया।

उसने अपनी गुप्त रहस्य जाननेवाली भुआ से इस कठिनाई का ज़िकर किया। भुआ ने उसका साहस बंधाया और उसे अपने साथ लेकर गीत गाती हुई धीरे २ महल से बाहर निकली। रास्ते में शिशुपाल के सिपाहियों ने राजा की आज्ञानुसार उन्हें जाने से रोक दिया, परंतु भुआ ने बड़ी चतुराई से कहला कर भेजा कि रुक्मणी ने एक कामदेव की मूर्त्ति के समक्ष प्रतिज्ञा कर रखी है कि यदि मेरा विवाह शिशुपाल के साथ होगा, तो मैं लग्न के दिन पूजा करने आऊंगी, इस लिए आज उसका वन में जाना अत्यन्त आवश्यक है। यह सुन कर राजा ने आज्ञा देदी। उद्यान में पहुंच कर रुक्मणी अकेली मूर्त्ति के पास गई और चारों ओर देखकर पुकार कर कहने लगी कि यदि द्वारकानाथ आए हों तो मुझे दर्शन दें। यह सुनते ही कृष्ण बल्देव सहित सामने आकर खड़े होगए और बोले कि जिसे तुमने याद किया है वह सामने खड़ा है। रुक्मणी ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया और उसका कंधा कम्पित होने लगा। बल्देव का इशारा पाते ही कृष्ण जी ने रुक्मणी को शीघ्र उठा कर रथ में बिठा लिया और सपाटे से रथ को हांक दिया।

चलते रथ में कृष्ण जी ने अपना शंख बजाया और भीष्म, उसके पुत्र रूप्यकुमार तथा राजा शिशुपाल और उस

के वीर योद्धाओं को ललकार कर वड़े ज़ोर से कहने लगा कि मैं द्वारकाधिपति कृष्ण, रुक्मणी को लिए जाता हूं, जिस में साहस हो वह आए और अपनी वीरता दिखलाए। यदि शक्ति हो तो रुक्मणी को छुड़ा कर लेजाए, वरन् तुम्हारी शूर वीरता को धिक्कार है। हे रूप्यकुमार! यदि तुम कुछ सामर्थ रखते हो तो आओ और अपनी वहिन को छुड़ा कर लेजाओ। हे शिशुपाल! जब मैं रुक्मणी को लिए जाता हूं तब तुम्हारे जीवन से क्या? हे राजाओ! तुम मेरे साथ युद्ध किए विना कैसे कृतार्थ हो सक्ते हो। यह कह कर कृष्ण अपने रथ को बन से बाहर निकाल लाए। उनके वचन सुन कर सारी सेना में हलचली मच गई और सब की सब उन की ओर उमंड आई, परन्तु कृष्ण बल्देव दोनों भाइयों ने क्षण मात्र में सारी सेना को रोक लिया।

इतनी वड़ी सेना को उनके विरुद्ध देख कर रुक्मणी निराश और चिंतित हो रही थी। कृष्ण जी ने यह देखकर उसे धैर्य दिया और कहने लगे, प्यारी देख तो सही अभी क्षणमात्र में सेना के सुभटों तथा उनके स्वामी राजाओं को यमराज के घर भेजे देता हूं। परंतु उसका शोक वंद नहीं हुआ। वह पूर्ववत् उदास और मलीन चित्त वैठी रही। तब कृष्णजी ने फिर पूछा, हे चन्द्रानने, कह तो सही तू क्यों इतनी दुखी हो

रही है। रुक्मणी ने लज्जा को संकोच कर के निवेदन किया, कि प्राणनाथ! मेरी एक प्रार्थना है और वह यह है कि संग्राम भूमि में आप कृपा कर के मेरे पिता तथा भ्राता को जीवित बचा दीजिए, नहीं तो संसार में मुझे लोक निंदा का दुख सहना पड़ेगा। कृष्ण जी मुस्कराकर बोले, हे कान्ते, तुम चिंता मत करो, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हारे पिता तथा भ्राता को संग्राम में जीवित छोड़ दूंगा। यह उत्तर पाकर रुक्मणी को बड़ी प्रसन्नता हुई और बोली हे नाथ! आप की इस संग्राम भूमि में जय हो।

इतने में दोनों ओर से घोर संग्राम होने लगा। इधर तो इतनी बड़ी सेना और इतने सुभट और उधर केवल ये दोनों भाई थे, परंतु ये दोनों रथ से उतर कर इतनी वीरता स लड़े कि इन्हों ने शत्रु की सारी सेना को तितर बितर कर दी। हज़ारों धड़ काट कर पृथ्वी पर गिरा दिए, लाखों को जहां के तहां सुला दिए। शिशुपाल को यमलोक पहुँचा दिया और रूप्य-कुमार को नागफास बाण द्वारा नख से शिख तक रस्सी के समान जकड़ कर बांध लिया। इस प्रकार युद्ध कर के, तथा मदोन्मत्त शत्रु का नाश कर के ये दोनों भाई रुक्मणी के पास आए। रुक्मणी ने अति नम्रता से प्रार्थना की कि हे नाथ कृपा करके मेरे भाई रूप्यकुमार को नागफास बाण से छोड़

दीजिए। श्री कृष्ण ने मुस्कराकर रूप्यकुमार को छोड़ दिया और नातेदारों के समान उसके साथ व्यवहार किया, परंतु रूप्यकुमार लज्जा के कारण कुछ न बोला और नीची गर्दन किये हुए वापिस चला गया।

❋ सातवां परिच्छेद ❋

तदनंतर दोनों भाई रुक्मणी सहित आनंद सागर में निमग्न हुए, अनेक प्रकार के विनोद प्रमोद करते हुए, और भांति भांति के वन उपवन देखते हुए, रैवतक पर्वत पर पहुंचे। वहां जाकर बल्देव जी ने श्रीकृष्ण और रुक्मणी का विधिपूर्वक पाणिग्रहण कराया। जब द्वारका नगरी में ये शुभ मंगलीक समाचार पहुंचे, तो समस्त पुर निवासियों को बड़ा आनंद हुवा। उन्हों ने नगरी को तोरणों तथा पताकाओं से श्रृङ्गारित किया और बड़ी धूम धाम से गाजे बाजे के साथ महाराज को लिवा लाने के लिये रैवतक पर्वत पर गए।

श्री कृष्ण अपनी प्रजा से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और रुक्मणी सहित नगरी में पधारे। नवीन वर वधू को देखने के लिये सब को ऐसी उत्कण्ठा हुई कि एक कौर हाथ में और एक मुँह में लिए ही लोग घरों से दौड़े आने लगे।

जब कृष्ण जी रुक्मणी सहित महल में पहुंचे, सौभाग्यवती स्त्रियों ने आरती उतारी और मंगलीक गीत गाए गए। कृष्ण जी ने रुक्मणी को अपना नौखण्डा महल सौंप दिया और वे उस से इतना अगाढ़ प्रेम करने लगे कि भोजन स्नानादि सब काम रुक्मणी के ही महल में होने लगा। अन्य रानियों के यहां आना जाना बिल्कुल बंद हो गया।

यह समय सत्यभामा के लिये बड़ा शोक मद था, वह रात दिन चिंता में ग्रसित रहती थी और पति-वियोग के असह्य दुःख से दिन २ दुबली होती जाती थी। इस पर भी प्रति दिन नारद जी आकर उसे चिड़ाया करते थे और कहते थे कि क्यों तुझे याद है न, तूने ही घमंड में आकर मुझे तिरस्कार की दृष्टि से देखा था।

❋ आठवाँ परिच्छेद ❋

एक दिन रुक्मणी के कहने से कृष्ण जी सत्यभामा के महल में गए, परंतु उन्हों ने सिवाय सत्यभामा को चिड़ाने के और कुछ न किया। धोके से रुक्मणी के पान की उगाल का सत्यभामा के मुख और गाल पर लेप करा दिया और पीछे से उसका हास्य उड़ाने लगे। इस से सत्यभामा को जितना

दुःख हुवा, लेखनी द्वारा उसका वर्णन करना असम्भव है।

अवसर पाकर सत्यभामा ने रुक्मणी से मिलने की इच्छा प्रगट की। कृष्ण जी ने रुक्मणी को वन देवी का रूप धारण करा कर बगीचे में एक वृक्ष के नीचे मौन से बिठा दिया और सत्यभामा से कह दिया कि तुम बगीचे में जाओ, रुक्मणी पीछे से आएगी और खुद भी वहीं छिपकर बैठ गये। सत्यभामा ने उसे न पहिचान कर और साक्षात् वन देवी जानकर उसकी पूजा वंदना की और उससे वरदान मांगा कि कृष्ण जी मेरे किंकर और भक्त बन जाएँ और रुक्मणी से विरक्त होजाएँ। इतने में कृष्ण जी ने निकलकर उसकी खूब मज़ाक़ उड़ाई और खिलखिला कर हँसने लगे। सत्याभामा लज्जा के मारे ज़मीन में गड़ गई। जो कुछ बन सका उत्तर दिया परंतु इसका उत्तरही क्या हो सकता था। वह बेचारी पहिले से ही दुखी थी, परंतु अब तो उसके दुख का कोई पार न रहा।

❀ नवमा परिच्छेद ❀

सत्यभामा का तमाम समय दुःख ही दुःख में वितीत होता था। कोई भी उपाय उसके शमन का न मिलता था। दैव योग से एक दिन उसे याद आया कि कृष्ण जी ने हस्तिनापुर के राजा दुर्योधन से यह

निश्चय कर लिया है कि आपकी व मेरी जो आगामी संतान होगी उसका परस्पर विवाह विधि के अनुसार मित्रता का सम्बंध होगा। इससे उसको बड़ी खुशी हुई। उसने यह विचार कर कि पहिले मेरे ही पुत्र उत्पन्न होगा, अपनी दूती को रुक्मणी के पास यह कहला कर भेजा कि यदि पुण्य के उदय से पहिले तेरे पुत्र हुवा तो पहिले धूमधाम से उसी का विवाह होगा, इसमें संदेह नहीं है और मैं उसके लग्न के समय उसके पांव के नीचे अपने शिर के केश रक्खूंगी, पश्चात् बरात चढ़ेगी। यह मेरा दृढ़ संकल्प है और कदाचित् पुण्योदय से पहिले मेरे ही पुत्र उत्पत्ति हुई तो तुम्हें भी मेरे कहे अनुसार अपने मस्तक के बाल मेरे पुत्र के चरणों में रखने होंगे। रुक्मणी ने यह बात स्वीकार करली और दोनों ने अपनी २ दासियों को राज्यसभा में भेजकर इस प्रण की कृष्ण बल्देव तथा सर्व यादवों की साक्षी लेली।

एक दिन रात्रि के पिछले समय में रुक्मणी ने छह स्वप्न देखे, प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक निवृत्त होकर तथा वस्त्राभूषण पहिन कर अपने प्राणनाथ श्रीकृष्ण जी के पास गई और उनसे स्वप्नों का फल पूछा। कृष्णजी स्वप्नावली को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे, हे कांते! निश्चय से तुम्हारे आकाश गामी और मोक्षगामी पुत्र होगा। देव

योगसेसत्यभामा ने भी इसी प्रकार स्वप्न देखे और कृष्ण जी ने उसे भी इसी तरह फल सुनाया।

गर्भ काल के पूरे नौ मास व्यतीत होने पर शुभ तिथि और शुभ नक्षत्र में रुक्मणी के पुत्र रत्न का जन्म हुआ जिसे देख कर रुक्मणी को परम आनंद हुवा। बंधु जनों ने नौकरों को श्रीकृष्ण के पास बधाई देने के लिये भेजा। कृष्ण जी उस समय सो रहे थे। रुक्मणी के नौकर कृष्णजी के चरणों के पास विनय पूर्वक खड़े होगए, इतने में सत्यभामा के नौकर भी बधाई देने को वहां आपहुँचे, परंतु वे घमंड के वश महाराज के सिरहाने खड़े हो गए। जब महाराज निद्रा से सचेत हुए तो सामने खड़े हुए नौकरों ने बधाई दी कि हे नराधीश ! आप चिरंजीव रहो, चिरकाल जयवंत रहो, महारानी रुक्मणी के पुत्र रत्न की उत्पत्ति हुई है।

यह सुनकर कृष्णजी को अपार हर्ष और आनंद हुआ। तुरंत मंत्रियों को बुलाकर हुकम दिया कि याचकों को जो वे मांगें सो दान दो, क़ैदियों को जेलखानों से छोड़ दो, जिनेन्द्र भगवान के मंदिरों में भक्ति भाव से पूजा विधान कराओ, और समस्त नगरी में उत्सव मनाओ। यह कह कर जो उन्हों ने अपने सिरको फिराकर सिरहाने की तरफ देखा तो सत्यभामा के नौकरों ने भी बधाई दी कि हे देव ! विद्याधरी सत्यभामा

महारानी के पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हुई है, इससे महाराज को और भी खुशी हुई और उन्हों ने हुक्म दिया कि इनको भी खूब इनाम दो। महाराज की आज्ञानुसार खूब दान दिया गया और घर २ में महान उत्सव मनाया गया।

दशवां परिच्छेद।

पांच दिन लगातार महल में अनेक महोत्सव हुए, किंतु छठे दिन रात्रि के समय जब रुक्मणी आनंद पूर्वक शयन कर रही थी और सहस्रों मंगल गीत गानेवाली तथा नृत्य करनेवाली स्त्रियां और दासियां उसके पास रक्षार्थ सो रही थीं, पापोदय से एक दैत्य जिसकी स्त्री को पहिले जन्म में महराराज के नव उत्पन्न पुत्र प्रद्युम्न ने मोह के वश वा दुर्बुद्धि की प्रेरणा से हर लिया था और जिसके वियोग से वह पागल हुआ गली २ फिरने लगा था, उसी रात्रि को विमान में वैठा आकाश में लीला से विचर रहा था। दैवयोग से उसका विमान रुक्मणी के महल के ऊपर आया और वालक के ऊपर आते ही वह पवन के समान चलनेवाला विमान आप से आप अटक गया। दैत्य विचारने लगा कि किस कारण से विमान रुक गया? क्या कोई नीचे जिन

प्रतिमा है या किसी शत्रु ने रोक दिया है या कोई चरम शरीरी देह संकट में पड़ा हुआ है, या कोई मित्र आपत्ति में पड़ा है। यह विचार ही रहा था कि उसने अपने कुअवधि ज्ञान से सारा हाल जान लिया कि जिस दुष्ट पापी राजा मधु ने मेरी प्राण वल्लभा को हर लिया था और मुझे असमर्थ जान कर दुख दिया था, उसी का जीव तपश्चरण के प्रभाव से, वहां से चयकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ था, अब वहां से देवांगनाओं के सुख भोग कर यहां रुक्मणी के उत्पन्न हुआ है। अतएव अब मेरा मौक़ा है, मैं इस दुष्टात्मा को क्षण भर में नष्ट करके अपना जी ठंढा करूंगा। यह विचार करके नीचे उतरा और समस्त पहरेदारों को मोह की निद्रा से अचेत करके महल के जड़े हुए कपाटों के छिद्र में से भीतर घुस गया। वहां रुक्मणी को अचेत करके बालक को सेज पर से उठाकर बाहर निकाल लाया और आकाश में ले गया और क्रोध मे नेत्र लाल करक उसको घुड़क कर बोला, रे रे दुष्ट, महापापी! तुझे याद है, तूने क्या २ अन्याय किए, किस तरह मेरी प्राणवल्लभा को मुझ से जुदा किया। अब बता तुझे कौन२ से भयंकर दुःखों का मज़ा चखाऊं? आरे से चीर कर तेरे खण्ड २ कर डालूं, अथवा तुझे किसी समुद्र की गोद में बिठा दूं। तेरे हज़ारों टुकड़े करके दिशाओं को बलिदान करदं

अथवा तुझे किसी पर्वत की गुफा में किसी चट्टान के नीचे दवा कर पीस डालूं। इस प्रकार दैत्य ने वेचारे वालक को वड़ी निर्दयता की दृष्टि से देखा और शिला के नीचे दवाने का ही दृढ़ संकल्प करके उसे तक्षक पर्वत पर ले गया। वहां एक वड़ी भयानक अटवी थी। इसे देख कर मनुष्य की तो क्या वात स्वयं यमराज को भी भय उत्पन्न होता था। यहां एक ८२ हाथ लम्बी, ५० हाथ मोटी मज़वूत चट्टान के नीचे दुष्ट दैत्य ने इस छह दिन के वालक को रखकर अपने दोनों पैरों से चट्टान को खूव दवाया और यह कह कर कि रे दुष्ट! यह तेरे ही कर्म्मों का फल है, वहां से चल दिया। पर इतना घोर उपसर्ग होते हुए भी वह वालक पूर्वोपार्जित पुन्य के उदय से नहीं मरा और उसका वाल भी वांका न हुआ। सच है, पुन्य के उदय से दुख भी सुख रूप हो जाता है।

❃ ग्यारहवां परिच्छेद ❃

दैव योग से अगले दिन जव सूर्य का प्रकाश हुआ, मेघकूट नरेश कालसंवर अपनी रानी कनकमाला सहित विमान में वैठे हुए उसी पर्वत पर आ निकले। चट्टान पर आते ही उनका विमान जो सपाटे से आकाश में जारहा था, एकाएक अटक गया और तिलमात्र

आगे पीछे न हटा। किस कारण से यह अटक गया, यह जानने के लिये, राजा प्राणप्रिया सहित विमान में से उतर कर नीचे आया और वन में घुसते ही देखा कि एक बड़ीभारी शिला किसी कारण से हिल रही है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और कौतूहल में आकर उसने कुछ अपने शरीरके बल से और कुछ विद्या के बल से ज्योंही शिला को हटाया, उस के तले एक सुंदर बालक को लेटा हुआ देखा। राजा ने उसे तुरंत गोद में उठा लिया और विचारने लगा कि यह बालक तो किसी उच्च कुल में उत्पन्न हुआ है। थोड़ी देर विचार करके रानी से कहा कि देवी, तेरे कोई पुत्र नहीं है और तुझे पुत्रकी बड़ी लालसा भी है, इस लिए इस सर्वांग सुंदर, सर्वगुण सम्पन्न बालक को ग्रहण कर। उसके हाथ में देने ही वाला था कि रानी ने अपना हाथ पीछे खेंच लिया। राजा ने कारण पूछा। रानी का हृदय दुःख से भर आया और उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी। उसने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, प्राणनाथ! आपके घर में दूसरी रानियों से जन्मे हुए अनेक पुत्र विद्यमान हैं, कहीं यह बालक उन पुत्रों का दास होकर रहा, तो यह बात सदा मेरे दिल में चुभती रहेगी। राजा ने रानी को धैर्य दिया और उसी समय अपने मुख के ताम्बूल से बालक को

तिलक करके युवराज पद दे दिया। माता ने गोद में लेकर आशीर्वाद दिया कि बेटा, तू चिरंजीव रह और अपने माता पिता को सुख दे।

पश्चात् राजा रानी विमान में बैठकर अपने नगर में आए। राजा ने तत्काल मंत्रियों को बुलाकर कहा कि हमारी रानी के गूढ़ गर्भ था, जो मालूम नहीं था, इस कारण दैव वशात् आज वन में ही उसके पुत्र उत्पन्न हुआ है अतएव तुम रानी को प्रसूतिगृह में लेजाओ और समस्त आश्वयक क्रियाओं का प्रबंध करो। मंत्रियों ने तुरंत आज्ञा का पालन किया। अनंतर राजा ने हुक्म दिया कि याचकों को उनकी इच्छानुसार दान दो, क़ैदियों को क़ैदखाने से मुक्त करो, नगर को तोरणादि से सुसज्जित करो और महोत्सव मनाओ।

६ रोज तक नगर में बड़ा उत्सव हुआ। सातवें दिन नाम संस्कार के लिये सब कुटुम्बी जन एकत्रित हुए और सब ने यह जान कर कि यह बालक "परान् दमयति" अर्थात् शत्रुओं का दमन करने वाला दीख पड़ता है उसका नाम 'प्रद्युम्न कुमार' रक्खा।

ज्यों २ कुमार बढ़ता गया कुटुम्बी जनों तथा सर्व साधारण मनुष्यों को संतोष होता गया। सब कोई उसे प्रेम दृष्टि से देखने और हाथों हाथ खिलाने लगे।

अहा हा! पुण्य की महिमा भी अपरम्पार है। जहां कहीं पुण्यात्मा जीव जाते हैं, उन्हें वहीं सर्व प्रकार की इष्ट सामग्री प्राप्त हो जाती है।

❋ बारहवां परिच्छेद ❋

उधर तो कालसंवर के यहां प्रद्युम्नकुमार अपने माता पिता को सुखी कर रहा था, उनकी मनो कामनाओं को पूर्ण कर रहा था, और आनंद में मग्न होरहा था, इधर जब रुक्मणी निद्रा से सचेत हुई और उसने अपने प्राणप्रिय पुत्र को अपने पास न देखा, उसके सारे बदन में सन्नाटा छा गया। ऊपर का दम ऊपर, नीचे का नीचे रह गया, मूर्छा आगई, होश हवास जाते रहे। बार २ उसकी मनमोहनी मूरत का स्मरण कर २ के रोने चिल्लाने लगी और छाती कूटने लगी। हाय, मेरा प्यारा आंखों का तारा पुत्र कहां गया। हाय! मेरे जीवन का अवलम्ब, मेरे नेत्रों का उजाला कहां लोप हो गया। रुक्मणी के विलाप को सुनकर सबकी छाती फटी जाती थी, सारे रणवास में कोलाहल मच रहा था और सबके नेत्रों से धारा प्रवाह जल बह रहा था।

इस दुःखमय कोलाहल को सुनकर श्रीकृष्ण एक दम नींद से जाग उठे और तुरंत नौकरों को देखने के लिये भेजा। नौकरों ने आकर प्रद्युम्न के हरण के हृदय विदारक समाचार सुनाए। उन्हें सुनते ही उनका चित्त घायल हो गया और वे पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर पड़े, अनेक शीतोपचार करने से होश में आए परंतु फिर बेहोश होगए और हाय २ करते हुए विलाप करने लगे। पुत्र के विना चहुँ ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता था। सारी राज्य विभूति और धन धान्यादि सम्पदा त्रणवत् जान पड़ती थी।

इसी शोक सागर में डूबे हुए एकदम उठे और धीरे २ रुक्मणी के महल की ओर चले। वहां पहुँच कर दोनों अधिक अधिक विलाप करने लगे। बुद्धिमान वृद्ध मंत्री गण ने संसार की असारता दिखलाते हुए और अनित्यादि भावनाओं का स्वरूप दर्शाते हुए निवेदन किया, कि महाराज, आप संसार के स्वरूप को भली भांति जानते हैं, इस में जो जन्म लेता है, वह एक न एक दिन अवश्य मृत्यु का ग्रास होता है। अनेक वल्देव, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण, इस पृथ्वी तल पर हो गए, परंतु अंत में वे भी यमराज के कठोर दांतों से दलगए और परलोक गामी बन गए। आप स्वयं बुद्ध हैं, शोक करना व्यर्थ है। शोक करने से दुख मिटता नहीं, किंतु

बढ़ता है। हे तीन खण्ड के स्वामि ! जब आपही शोक करते हैं तो आपकी सारी प्रजा भी विकल हो जायगी। ऐसा जान कर आप शोक को त्यागकर धैर्य धारण कीजिये और इस में संदेह नहीं कि जो बालक यादव कुल में उत्पन्न होता है वह प्रायः सौभाग्यवान और दीर्घ आयु का धारक होता है। हमें विश्वास है कि आपके पुत्र को कोई वैरी हरकर ले गया है। वह जहां गया है वहां ही सुख से तिष्ठा होगा, कुछ दिन बाद अवश्य आप के घर आएगा।

इस प्रकार मंत्रियों के समझाने से राजा ने शोक को त्याग दिया और रुक्मणी को समझाने लगे; तथा यह निश्चय जानकर कि पुत्रको कोई वैरी हरकर लेगया है चारोंओर अनेक तेज़ घुड़सवारों को सेना सहित पुत्र की खोज में रवाना किया।

इतने में आकाशमार्ग से नारदजी को आते देखकर श्रीकृष्ण अपने आसन से विनय पूर्वक खड़े होगए और नमस्कार करके उनको अपने आसन पर बैठाया। नारद जी दुःखी होकर मौन से बैठ गए। थोड़ी देर के बाद दुख को दाब कर संक्लेश सहित बोले, कृष्णराज ! निश्चय जानो जो कुछ जिनेन्द्रदेव ने कहा है वह अक्षर २ सत्य है, वही मैं कहता हूं। जितने संसारी जीव हैं उनका एक न एक दिन अवश्य विनाश होता है, यह जान कर शोक करना निष्फल

है। आप स्वयं शास्त्रों के ज्ञाता हैं, मैं आपको क्या समझाऊं। कृष्णजी बोले, महाराज! आपका कहना सत्य है, कृपा करके आप रुक्मणी को समझाइये, उसका धैर्य बंधाइये, उसके दुःख को देखकर मेरा हृदय फटा जाता है।

नारदजी रुक्मणी के पास गए। रुक्मणी उनका आदर पूर्वक सन्मान करके उनके चरणों में गिर पड़ी और रोने लगी। नारदजी ने ज्यों त्यों अपना दुख दाब कर कहा, बेटी, खड़ी होजा, शोक मत कर, जिस पुत्र का तीन खण्ड का स्वामी कृष्ण तो पिता, और तेरे जैसी जगद्विख्यात् माता है, किसकी सामर्थ्य है कि उसको मारडाले। ऐसा बालक कदापि अल्पायु नहीं होसकता। निश्चय से, कोई पूर्व जन्म का वैरी उसे हरकर लेगया है। थोड़े दिन में अवश्य तेरे पास आएगा, तू घबरा मत। मैं सर्वत्र तलाश करके तेरे पुत्र को ले आऊंगा। अढ़ाई द्वीप में ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहां मेरा गमन न हो। मैं समस्त भूमि पर तेरे पुत्र को तलाश करूंगा। तू शोक मतकर और धीरज धारण कर। मैं अभी विदेह क्षेत्र में जाकर श्रीसीमंधर स्वामी से जो अतिशय विभव संयुक्त समवसरण में विराजमान हैं, तेरे पुत्र का सम्पूर्ण चरित्र सुनकर आऊंगा।

❀ तेरहवां परिच्छेद ❀

इतना कहकर नारदजी चलदिए और सुमेरु पर्वत पर पहुंचे। वहां से प्रातः काल संध्या वंदनादि नित्य क्रिया तथा जिन मंदिरों की वंदना करके पुंडरीक पुरी को रवाना हुए जहां धर्मचक्र के प्रवर्तक श्री तीर्थंकर देव सदाकाल विराजमान रहते हैं, और ६ खण्ड पृथ्वी के चक्रवर्ती और बल्देव वासुदेवादिक भी सर्वदा विद्यमान रहते हैं। नारदजी ने आकाश से नीचे उतर कर समोसरण में प्रवेश किया और भगवान् की प्रदक्षिणा देकर भांति २ के वचनों से स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् जिनेन्द्र के चरण कमल के पास बैठ गए। उसी समय पद्मनाभि चक्रवर्ती भगवान के सामने बैठा हुआ था, उसने नारद जी को सिंहासन के तले बैठा देखकर आश्चर्य पूर्वक उसे अपनी हथेली पर उठा लिया और जिनेश्वर देव को नमस्कार करके विनय पूर्वक निवेदन किया कि महाराज! यह जीव किस गति का धारक है, कहां का निवासी है और यहां कैसे आया है? जिनेश्वर भगवान् ने दिव्यध्वनि द्वारा नारद जी का सारा हाल सुनाया और कहा कि यह श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का पता पूछने के लिए यहां मेरे पास आया है। फिर चक्रवर्ती के प्रश्नानुसार कृष्ण जी का सारा वृत्तांत, दैव का प्रद्युम्न

को हरना, तक्षक पर्वत पर शिला के नीचे दबाना तथा राजा कालसंवर का प्रद्युम्न को लेजाना इत्यादि वर्णन किया और यह भी कहा कि जब कुमार १६ वर्ष का होगा तब सोलह, प्रकार के लाभ और दो विद्याओं सहित द्वारका में आकर अपने माता पिता से मिलेगा। उसके घर आते समय अनेक प्रकार की शुभ सूचक घटनाएँ होंगी। रुक्मणी के स्तनों से आप से आप दूध झरने लगेगा। कमलों के समूह प्रफुल्लित हो जायँगे। घर की बावड़ी जो सूख रही है पानी से भरजायगी। घर के सामने का अशोक वृक्ष जो सूख रहा है, हरा-भरा होजायगा। इसी प्रकार अन्य वृक्ष अपनी २ ऋतु का समय उल्लंघन कर एकदम फूल फल उठेंगे इत्यादि अनेक आश्चर्य जनक क्रियाएँ होंगी।

पश्चात् पद्मनाभि चक्रवर्ती के पुनः प्रश्न करने पर प्रद्युम्न के पूर्व भावोंका सविस्तर वर्णन किया और कहा कि प्रद्युम्न का जीव पूर्व भव में अयोध्या का राजा मधु था। उस समय मोह जाल में फँस कर दुर्बुद्धि की प्रेरणा से उसने वटपुर के राजा हेमरथ की रानी चन्द्रप्रभा पर आसक्त होकर उसे छल बल से हरलिया था। उसके विरह में हेमरथ पागल होगया था। अब उसी हेमरथ का जीव दुख रूपी संसार सागर में चिर काल पर्यंत नीच योनियों में परिभ्रमण करता हुआ कर्म योग

से मनुष्य होकर और मर कर धूमकेतु नाम का असुरों का नायक देव हुआ है। यही दैत्य विमान में बैठकर आकाश मार्ग से क्रीड़ा करता हुआ जारहा था। दैवयोग से उसका विमान रुक्मणी के महलपर जिसमें वह बालक सोरहा था, अटक गया। तब उसे अपने कुअवधिज्ञान से प्रगट हुआ कि पूर्व भव में जिस राजा मधु ने मेरी प्राणवल्लभा को हरा था, वही मेरा वैरी ज्ञान ध्यान के प्रभाव से स्वर्गादिक के अतुल्य सुख भोग कर अब यहां जन्मा है। अतएव वैर भंजाने के विचार से वह दुष्ट दैत्य बेचारे ६ दिन के बालक को हर कर लेगया। इस प्रकार श्रीसीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि से कृष्ण पुत्र का सारा वृत्तांत सुनकर नारद जी अत्यंत हर्षित हुए और तीर्थंकर महाराजको साष्टांग प्रणामकरके समवसरण से बाहर निकल आए। श्री कृष्ण के प्रेम बंधन की प्रेरणा से और उन के पुत्र को देखने की अभिलाषा से वे मेघकूट नगर में राजा कालसंवर के यहां आए और कृष्ण पुत्र को जी भर देख कर तथा उसे आशीर्वाद देकर द्वारका नगरी की ओर रवाना होगए। द्वारका में पहुँचते ही नारद जी पहिले तो मधुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र से मिले, पीछे रुक्मणी से मिले और रुक्मणी को प्रद्युम्न विषयक सम्पूर्ण वृत्तांत जो सीमंधर स्वामी ने दिव्यध्वनि में वर्णन किया था, कह सुनाया। यह वृत्तांत सुनकर

रुक्मणी को अथाह आनंद हुआ। वह अपनी चिरजीवि पुत्र को याद करती हुई और उसके आगमन की बाट देखती हुई सुख से रहने लगी।

❋ चौदहवां परिच्छेद ❋

उधर प्रद्युम्न दिनों दिन दोयज के चंद्रमा के समान बढ़ता गया, सर्व स्त्री पुरुष उसे प्यार करने लगे और हाथों हाथ खिलाने लगे। ज्यों २ कुमार बड़ा होता गया राजा काल संवर की ऋद्धि सिद्धि भी समस्त वृद्धि को प्राप्त होती गई। इस प्रकार अतिशय सुखमई बाल्यावस्था को उल्लंघन कर कुमार यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ और थोड़े ही काल में शास्त्रों में व शस्त्र विद्या में प्रवीण होगया। अनेक प्रकार की कला में कुशल होगया, गुण गण सम्पन्न हो गया और धीरता वीरता आदि गुणों में समस्त शूरवीरों में अग्रसर होगया। जो राजा कालसंवर पर चढ़ाई करता अथवा किसी प्रकार की उद्दंडता दिखलाता, प्रद्युम्न तत्काल उसे परास्त करके यमपुरी को पहुँचा देता और उसकी सेना को दशों दिशाओं में भगा देता।

इस प्रकार अनेक राजाओं का मान गलित करके प्रद्युम्न कुमार ने दिग्विजय के लिये पयान किया और थोड़े ही

दिनों में समस्त शत्रुओं को परास्त करके बड़ी विभूति सहित लौट आया। राजा काल संवर ने यह समाचार सुनकर बड़ा उत्सव किया और यह विचार कर कि सबके सामने इसे युव-राज पद देदूं, देश देशांतरों के राजाओं को निमंत्रण देकर बुलवाया और समस्त मंडली के समक्ष में कुमार को युवराज पद पर स्थापित कर दिया। कुमार ने इस पदको सहर्ष स्वीकार किया और अपने पिता का बड़ा आभार माना। इस महोत्सव की खुशी में याचकों को मुंह मांगा दान दिया गया।

❋ पंद्रहवां परिच्छेद ❋

हाय ईर्षा! तेरा सत्यानाश हो, तेरा मुंह काला हो, तूने जिस घरमें प्रवेश किया, उसे बरबाद किये बिना न छोड़ा। यहां तो प्रद्युम्न को युवराज पद प्रदान किये जाने से लोगों को अपार हर्ष हो रहा था, किंतु महलों में राजा कालसंवर की अन्य ५०० स्त्रियों में जिन से ५०० पुत्र हुए थे, द्वेषाग्नि प्रज्वलित होरही थी। चन्द्रप्रभा के पुत्र को युवराज पद क्यों मिला, यह उनसे सहन न हुआ। उन्हों ने अपने पुत्रों से क्रोधित होकर कहा, हे शक्तिहीन कुपुत्रो! तुम हुए जैसे न हुए। तुम्हारे होने से क्या लाभ? जब तुम्हारे देखते २ जिसकी जाति पांति का कुछ पता नहीं, उस

दुष्टात्मा ने तुम्हारा युवराज पद ले लिया और तुम कोरे रह गए, तब तुम्हारे जीने से क्या? इस से तो मरे ही अच्छे थे। पुत्रों ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि माताओ! अब क्या करें जो आज्ञा हो। माताओं ने कहा कि जिस तरह बने उस पापी प्रद्युम्न के प्राण ले लेना चाहिये। पुत्र माताओं के अभिप्राय को समझ कर और प्रद्युम्न को समाप्त करने का दृढ़ विचार कर के प्रद्युम्न से जाकर मिले और उससे ऊपरी प्रीति करने लगे। वे सदा उसके मारने का घातविचारते रहते और उस के भोजन में विप मिला दिया करते थे, परंतु उसके पूर्व पुन्य के उदय से वह विप अमृत रूप हो जाता था।

जब उन दुष्टों ने देखा कि हज़ारों उपाय करने पर भी प्रद्युम्न का कुछ बिगाड़ न हुआ, तब उन्हों ने एक दूसरा पड्-यंत्र रचा। वे सब एक दिन उसे विजयार्ध शिखिर पर ले गए। जब सब ने गिरि शिखिर पर गोपुर देखा, तब वज्र-दंष्ट्र, जिसे सबने अग्रेसर बना रक्खा था, बोला, भाइयो! जो कोई इस गोपुर के भीतर जायगा, उसे मनोवांछित लाभ होगा और वह पीछे कुशलता से लौट आयगा। ऐसा वृद्ध विद्याधरों का कथन है। यह कदापि असत्य नहीं होसकता; अतएव तुम यहीं ठहरो, मैं जाता हूं और शीघ्र लाभ लेकर आता हूं। इस पर पराक्रमी सरल चित्त प्रद्युम्न बोला, भाई

कृपा करके मुझे आज्ञा दो, मैं जाकर ले आता हूं, आप क्यों कष्ट उठाते हैं। वज्रदंष्ट्र तो यह चाहता ही था, उसने तुरंत आज्ञा दे दी।

प्रद्युम्न निःशंक अंदर चला गया और बीच में पहुँच कर उसने ज़ोर से शब्द किया तथा पैरों से द्वार को धका दिया। शब्द के सुनते ही भुजंग नाम का देव जागउठा और क्रोध से लाल होकर कुमार पर झपट कर बोला, अरे दुराचारी, अधम मनुष्य! तूने मेरे पवित्र स्थान को क्यों अपवित्र किया? क्या तू मुझे नहीं जानता, मैं तेरे अभी टुकड़े २ करे डालता हूं और तुझे यमलोक पहुंचा देता हूं। कुमार ने धीर-वीरता से उत्तर दिया, रे असुराधम! मूढ़! क्यों वृथा गर्जता है। तुझ में कुछ बल हो तो आ, और मुझ से युद्ध कर। यह कहने की देर थी कि देव लाल पीली आंखें करके कुमार पर बड़े ज़ोर से झपटा। दोनों शूरवीरों का महाभयंकर मल्लयुद्ध हुआ और दोनों बहुत देर तक लड़ते रहे। अंत में भुजंग देव हार गया और कुमार के चरणों में गिर कर बोला, हे नाथ! मैं आपका चाकर हूं आप मेरे स्वामी हो, मुझ पर कृपा करो, मेरा अपराध क्षमा करो।

इस प्रकार प्रसन्न करके देव ने कुमार को स्वर्णमय रत्न जटित सिंहासन पर बैठाया और विनय पूर्वक निवेदन किया कि महाराज! मैं आपके लिये ही चिरकाल से निवास करता

हूं। राजा हिरण्यनाभि ने दीक्षा लेते समय मुझे यह कहकर यहां भेजदिया था कि जो कोई गर्वशाली बलवान् तथा सर्वमान्य पुरुष मणि गोपुर में आवे और तुझ से युद्ध करने के लिये कमर कसके तैयार हो जावे, वही मेरी विद्याओं का नायक होगा। उनकी आज्ञानुसार मंत्र मण्डल की रक्षा करता हुवा मैं आपकी तलाश में यहां रहता हूं। अब आप इन विद्याओं को ग्रहण कीजिये और यह निधि तथा कोष भी अंगीकार कीजिए।

पश्चात् अमूल्य मुकुट और दिव्य आभरण देकर कुमार की पूजा करके वे विद्याएँ बोलीं, महाराज! आप ही हमारे स्वामी हो, हमारे लायक़ चाकरी हो सो कहो। कुमार ने उत्तर दिया, जब हम याद करें तब हाज़िर होना।

उधर वज्रदंष्ट्र ने यह विचार कर कि प्रद्युम्न को गए बड़ी देर होगई है, वह अवश्य मारा गया है, खुशी २ भाइयों से घर चलने को कहा। किंतु ज्योंही वे चलने लगे, उन्हों ने प्रद्युम्न को गुफा में से आभूषण पहिने आते देखा। उसे देखते ही वे सब राजकुमार गर्व गलित होगए, परंतु मन के भावों को छुपा करके उसे काल गुफा की ओर लेचले।

बड़े भाई की आज्ञा पातेही प्रद्युम्न निडर अंदर चला गया और पूर्ववत् वहां का राक्षसेंद्र भी प्रद्युम्न का शब्द सुन-

ते ही क्रोध से अरुण नेत्र किये हुए प्रगट हुआ और बोला, अरे पापी! नराधम! तेरी क्या मौत आई है जो तूने मेरे स्थान को अपवित्र किया। प्रद्युम्न ने उत्तर दिया, रे शठ! मूर्ख! क्यों बकबक करता है, यदि तू शूरवीर है, धीर है और रण कला में चतुर है तो आ, शीघ्र मुझ से युद्ध कर। इस पर दोनों में युद्ध होने लगा, परंतु देव हार गया। फिर तो वह भक्ति पूर्वक कुमार के चरणों में गिरपड़ा और चंवर छत्रादि देकर बोला, हे नाथ! मैं आप का किंकर हूं, आप मेरे स्वामी हैं। तब कुमार उसे वहीं स्थापन करके और चंवर छत्रादि लेकर उस विकराल गुफा से बाहर निकल आया।

जब राजकुमारों ने देखा कि प्रद्युम्न यहां से भी बचकर देव से पूजित होकर चला आया है तो वे उसे तीसरी नाग गुफा की ओर ले गए। वहां भी नागराज के साथ भयंकर युद्ध हुआ, परंतु अंत में कुमार की जय हुई। तब सर्पराज ने संतुष्ट होकर कुमार को नागशय्या, वीणा, कोमल आसन, सिंहासन, वस्त्र, आभूषण, तथा गृहकारिका और सैन्य रक्षिका ये दो विद्याएँ दक्षिणा में दीं। कुमार भेट के पदार्थों को लेकर सुरक्षित बाहर चला आया।

तदनंतर वे सब कुमार को एक भयंकर देव रक्षित बावड़ी दिखलाने को लेगए। वज्रदंष्ट्र बोला, जो कोई शंका रहित

इस वापिका में स्नान करता है, वह सुभग रूप सम्पन्न और जगत् का पति होता है। यह सुनते ही प्रद्युम्न बावड़ी में कूद पड़ा और निर्भय होकर पानी में मज्जन करने लगा। उसके दोनों हाथों से वापिका का जल बल पूर्वक ताड़ित होने से वापिका रक्षक देव बड़ा क्रोधित हुआ और इसके शब्दों को सुनकर बाहर निकला और कुमार के साथ लड़ने लगा। अंत में कुमार ने असुर को हरादिया। तबतो वह चरणों में गिर पड़ा और एक मकर की ध्वजा कुमार को भेट करके बोला, महाराज मैं आपका किंकर हूं, आप मेरे स्वामी हो। उसी समय से संसार में प्रद्युम्न का मकरकेतु नाम प्रसिद्ध हुआ।

प्रद्युम्नकुमार को लाभ लिए हुए आता देख कर भाइयों का मुंह पीला पड़ गया, तौभी वे ऊपरी प्रसन्नता प्रगट करके उसे एक जलते हुए अग्निकुंड के दिखलाने को लेगए। प्रद्युम्न निःशंक वहां चला गया और उसमें कूद पड़ा। जब कुमार ने उसे चहुं ओर से दलमलित किया, तब वहां का देव क्रोध से लाल मुख करके प्रगट हुआ और दोनों में घोर युद्ध होने लगा। थोड़ी ही देर में देव हार गया और कामदेव के पैरों में पड़ कर बोला, महाराज! आज से मैं आप का दास हो गया। लीजिए ये अग्नि के धोए हुए तथा सुवर्ण तंतु के बने हुए दो वस्त्र ग्रहण कीजिए। उनको लेकर कुमार बाहर निकल आया।

फिर वे उसे मेपाचार पर्वत पर लेगए। वहां भी पर्वत क रहने वाले देव के साथ युद्ध हुआ। अंत में देव ने हार कर और नम्रीभूत होकर कुमार का दासत्व स्वीकार कर लिया और दो रत्नों के कुंडल उसकी भेट किए, जब भाइयों ने प्रद्युम्न को कुंडल लिए हुए आते देखा तो सब कुपित होकर वज्रदंष्ट्र से बोले कि अब हम इस दुष्टबलवाले प्रद्युम्न को मारे विना न छोड़ेंगे। यह पापी जहां जाता है वहीं से महा लाभ लेकर आता है। वज्रदंष्ट्र ने उत्तर दिया, भ्रातृगण, निराश मत होओ, उत्साह भंग न करो। अभी तो सैंकड़ों उपाय इसके मारने के हैं। किसी न किसी जगह लोभ में आकर फँस जायगा।

इतने में प्रद्युम्न आगया। सब मायावी भ्राता उससे मिले और उसे विजयार्द्ध पर्वत पर लेगए। उस वन में एक आम का वृक्ष खड़ा था। वज्रदंष्ट्र के कहने से प्रद्युम्न उसपर चढ़ गया और उसकी डालियों को ज़ोर से हिलाने लगा। तब वहां का देव बंदर का रूप धारण करके प्रगट हुआ और कुपित होकर कुमार को धुत्कारने लगा। बंदर के दुर्वचन सुनते ही कुमार ने उसको पकड़ लिया और उसकी पूंछ पकड़ कर गिराना ही चाहता था कि वह भयभीत होकर प्रगट होगया और बोला, मुझे छोड़ दो, मुझ पर दया करो। मैं

आप का सेवक हूं। लीजिए, ये मुकुट, अमृतमाला और आकाश गामिनी पादुका आप की भेंट हैं। इस तरह उस दैत्य को अपना बनाकर कुमार वृक्ष पर से नीचे उतर आया।

अब वे राजकुमार उसे कपिल नाम के वन में लेगए। वहां एक असुर हाथी का आकार धारण करके प्रगट हुआ और कुमार से युद्ध करने लगा। अंत में उसे भी जीतकर वहां से सुरक्षित चला आया। अबतो राजकुमार मन में बड़े खेद खिन्न हुए और उसे अनुवालक शिखर पर लेचले। वहां भी पहिले की नांई सर्प आकार धारण करने वाले एक दैत्य से मुठभेड़ होगई, मगर कुमार ने उसे भी शीघ्र जीत लिया और उससे अश्वरत्न, छुरी, कवच और मुद्रिका प्राप्त करके सकुशल लौट आया।

उसे देखकर सब भाई आपस में विचार करने लगे कि यह पापी मरता ही नहीं। इसका क्या करें। अबकी बार वे उसे दो और पर्वतों पर लेगए मगर वहां भी उसकी जय हुई और वहां के देवों ने कंठी, बाजूबंद, कड़े, कटिसूत्र, शंख तथा पुष्पमई धनुष आदि दिव्य वस्तुओं से उसका सन्मान किया।

जब यहां पर भी दाल न गली तब क्रोधित हुए राज-कुमार उसे पद्म नामक वन में ले गए। यहां उसने देखा कि वसंतक नाम के विद्याधर ने एक दूसरे मनोजव विद्याधर

को एक वृक्ष के नीचे बांध रक्खा है। कुमार ने दया करके मनोजव को बंधन से मुक्त कर दिया जिसके उपलक्ष में विद्याधर ने कुमार को एक बहुमूल्य हार और एक इंद्रजाल ये दो विद्याएँ दीं। पश्चात् कुमार ने उन दोनों विद्याधरों का आपस में मेल भी करा दिया जिससे संतुष्ट होकर वसंतक विद्याधर ने अपनी एक अतिशय सुंदरी कन्या कुमार को भेट की। देखिये पुण्य से क्या २ वस्तुएँ प्राप्त नहीं होजातीं।

प्रद्युम्न तो भाग्य का धनी था, भाई भले ही उसे मौत के मुँह में ढकेलते थे मगर वह वहां से लाभही प्राप्त करके आता था। इस वार वे उसे काल वन में ले गए। यहां भी उसे एक दुष्ट दैत्य का सामना करना पड़ा, जिसने परास्त होकर कुमार की चाकरी स्वीकार की और उसे मदन मोहन, तापन, शोषण और उन्मादन इन पांच विख्यात पुष्प वाणों सहित एक पुष्प धनुष भेट किया। उसी समय से मनुष्यों को मोहित करने वाला और स्त्रियों को उन्मादन करने वाला वह कुमार यथार्थ में मदन अर्थात् कामदेव नाम को धारण करनेवाला होगया। इस लाभ को लिए हुए आता देख कर राजकुमारों का जी जल गया। अब वे उसे भीमा नाम की गुफा में ले गए। कुमार ने वहां के अधिकारी देव को जीत कर उससे भी एक पुष्पमई छत्र, और एक सुंदर शय्या भेट में प्राप्त की।

यह देखकर राजकुमार थक गए और अपने बड़े भाई वज्रदंष्ट्र से कहने लगे कि अब हम इसे मारे बिना न छोड़ेंगे, यह जहां जाता है वहां से लाभही प्राप्त करके आता है। वज्र-दंष्ट्र ने उत्तर दिया, भाइयो! घबराओ मत, अब भी दो स्थान और बाक़ी हैं, वहां ले जाकर हम इस दुष्ट को अवश्य मार डालेंगे।

तब वे उसे विपुल नामक वन में लेगए। वहां जयंत नाम का बड़ा भारी पर्वत था। प्रद्युम्नकुमार तुरंत वन में घुसगया और वहां नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे पड़ी हुई एक शिला पर एक सर्वांग सुंदरी युवती को तपस्या करते हुए देखा। उसके रूप लावण्य को देखते ही कुमार काम के बाण से घायल होकर व्यग्रचित्त हो गया और वहीं पर बैठ गया। इतने ही में वसंत नामका एक देव वहां आया। वह कुमार के चरणकमलों को नमस्कार करके समीप बैठ गया। कुमार के प्रश्न करने पर देव ने उस युवती का सारा हाल सुनाया और कहने लगा कि यह विद्याधरों के स्वामी प्रभंजन की पुत्री रती है। यह आपही की बाट में यहां तप कर रही है। एक मुनिराज ने कहा था कि यह प्रद्युम्नकुमार की प्राण-वल्लभा होगी, अतएव आप इसे ग्रहण करें। इसके पुण्य के प्रभाव से आप यहां पधारे हैं। आप दोनों का जैसा रूप है

ऐसा पृथ्वीतल पर किसी दूसरे का नहीं है। प्रद्युम्नकुमार ने इस बात को सहर्ष स्वीकार किया, तब उस देवने इन दोनों का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करा दिया।

पाणिग्रहण हो चुकने के पश्चात् उसी मनोहर वन में एक सकट नामका असुर प्रद्युम्नकुमार से आकर मिला और प्रणाम करके कामधेनु और एक सुंदर पुष्पों का रथ, ये दो दिव्य वस्तुएँ भेट कीं, प्रद्युम्नकुमार उसी पुष्परथ पर अपनी प्राणप्यारी रती के साथ सवार होकर उस वन से तत्काल बाहर निकल आया। जब भाइयों ने सोलहों लाभों को प्राप्त करने वाले कुमार को देखा तब वे सबके सब मलीन मुख होगए।

सुंदर मदनकुमार रती के साथ रथ में आरूढ़ होकर आनंद से चला। उसके आगे २ वे सब विद्याधर भाई चले। पुण्य की यही महिमा है और पाप का यही फल है।

❀ सोलहवां परिच्छेद ❀

रती के साथ कामदेव का आगमन सुनकर नगर की स्त्रियां जिस दशा में थीं उसी दशा में देखने के लिये दौड़ने लगीं और ज़रासी देर में इतनी भीड़ जमा हो गई कि देखने की अभिलाषा से एक दूसर को धक्का देती थीं

और 'ज़रा हट ज़रा हट' कहती जाती थीं, और इस अतुल्य जोड़े को देखकर आपस में नाना प्रकार के विनोद करती थीं।

इस प्रकार नगर की स्त्रियों को दर्शन देता हुआ प्रद्युम्न कुमार राजमहल में पहुँचा। बड़ी नम्रता से पिता को प्रणाम किया। पिता ने पुत्र का आलिंगन किया और मस्तक को चूमा। फिर कुशलक्षेम पूछी। थोड़ी देर बैठकर कुमार पिता की आज्ञा लेकर माता के मंदिर में गया और बड़े विनीत भावों से जननी का आलिंगन करके चरण कमलों को विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। कनकमाला ने अपने श्रेष्ठ पुत्र को आशीर्वाद दिया। परंतु, हाय! पाप की बुरी गति है। पूर्व भव में जो कनकमाला का जीव राजा मधु की रानी चंद्रप्रभा था, उसी पूर्व भव के प्रेम का संचरण उसके मन में हो आया वह मूर्खा काम पीड़ा से बींधी गई। माता पुत्र का सम्बंध भूल गई, खोटी बुद्धि होगई। कुमार के सर्वांग सुंदर शरीर और आदर्श रूप को देखकर काम की प्रेरी हुई कनकमाला मर्म का भेदन करने वाले कामदेव के बाण से पीड़ित होकर दीनमुख होगई। विरह की अग्नि से उसका सारा शरीर दहकने लगा। विरह से आद्रित होकर नेत्रों से आँसू बहाने लगी और विचारने लगी, क्या करूं कहाँ जाऊँ, किससे पूछूं। इस सुंदर कुमार को सेवन किये बिना मेरा रूप, मेरी कांति और मेरे

सर्वगुण निष्फल हैं। जब तक कनकमाला इन विचारों में उलझी रही, तब तक कुमार नमस्कार करके अपने महल को भी चला गया।

प्रद्युम्न के चले जाने पर कनकमाला निर्लज्ज होकर नाना प्रकार की विकार चेष्टाएं करने लगी। बहुत से वैद्यों ने उसे आकर देखा परंतु कुछ फल न हुआ। उसका विरह रोग क्षण २ में बढ़ता गया।

सत्रहवां परिच्छेद।

एक दिन राजसभा में बैठे हुए राजा कालसंवर ने प्रद्युम्नकुमार से कहा, बेटा, तेरी माता रोग से अतिशय पीडित है उसके जीवन की भी आशा नहीं है, और तू उसके पास गया तक नहीं। कुमार ने विनय पूर्वक उत्तर दिया कि पिता जी, मैंने माता की बीमारी की बात न तो सुनी और न जानी, इसलिये नहीं गया, अभी जाता हूं। ऐसा कहकर उसी समय कनकमाला के महल की ओर चलदिया। वास्तव में माता की बुरी दशा है खाली भूमि पर पड़ी है, शरीर विरह से घायल हो रहा है। प्रद्युम्न विनय पूर्वक नमस्कार करके बैठ गया और रोग के कारण का विचार करने लगा। इतने में कामवती

कनकमाला आलस्य से जंभाई लेती हुई उठबैठी और समस्त दास दासियों को दूर करके अंगड़ाती हुई बोली, हे मदन ! क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे माता पिता कौन हैं? प्रद्युम्न ने उत्तर दिया माता, आप ऐसा क्यों पूछती हैं। मेरी समझ में तो निश्चय आपही माता और महाराज कालसंवर मेरे पिता हैं। रानी ने कहा, ऐसा नहीं है। तुम्हारा अनुमान ग़लत है। हम तुम्हारे माता, पिता नहीं हैं। एक दिन हम दोनों वनक्रीड़ा करने के लिये तक्षक पर्वत पर गए थे। वहां हमने तुमको एक शिला के नीचे दबाहुआ देखकर निकाल लिया था और अपने हृदय में यह निश्चय करके कि तरुण होने पर मैं तुम्हें ही अपना पति बनाऊँगी, तुम्हें उठाकर घर ले आई थी, सो अब तुम तरुण होगए हो, अतएव मेरे साथ भोगों को भोगो, नहीं तो मैं विष खाकर मरजाऊँगी और स्त्रीहत्या का कलंक तुम्हारे माथे लगेगा।

माता के ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्न का माथा ठनक गया। हाय यह क्या हुआ। वह माता को बार २ समझाने लगा, पर उसपर कुछ असर न हुआ। लाचार थोड़ी देर में अव-सर पाकर महल से निकल आया और इसी चिंता में घर छोड़ कर द्वादशांग के धारी अवधिज्ञानी श्रीवरसागर मुनिमहाराज के पास गया। भक्ति पूर्वक वंदना करके निवेदन किया, महा-

राज! मुझे बड़ी चिंता होरही है, कृपा करके यह बतलाइये कि मेरी माता मुझपर क्यों आसक्त हुई है और उसके मन में क्यों ऐसे विकार उत्पन्न हुए हैं। महाराज ने उत्तर दिया, कुमार, संसार की विचित्र लीला है। यह सब पूर्वजन्म के सम्बंध का कारण है। पूर्व भव में तू राजा मधु था और कनकमाला हेमरथ की रानी चंद्रप्रभा थी जिसको तूने मोह के वश हरलिया था। उसके साथ तूने बाईस सागर पर्यंत स्वर्ग में उत्कृष्ट सुख भोगे और अब उसी मोह के वश से वह तुझे देखकर काम से संतप्त होगई है और तुझे दो विद्याएँ देना चाहती है, सो तू जा किसी तरकीब से उनको लेले।

इसके अनंतर कुमार ने प्रश्न किया, महाराज! कृपा करके यह भी बतलाइये कि मेरे माता पिता कौन हैं, मेरा कैसे हरण हुआ और किस पाप के उदय से मेरा माता से वियोग हुआ? मुनि महाराज ने उत्तर दिया, वत्स! तेरे पिता द्वारकाधिपति यदुवंशतिलक श्रीकृष्ण नारायण हैं और माता जगत विख्यात् रुक्मणी देवी है, पूर्वभव के वैरी हेमरथ के जीव ने जो अब दैत्य है वैर से सोते समय तुझे हरण करके तक्षक पर्वत की एक शिला के नीचे दाब दिया था। यह तेरा वियोग तेरी माता के पापोदय से हुआ है। उसने पहिले किसी मयूर के बच्चे को कौतुक वशात् अलग करदिया था

और उसे १६ घड़ी माता से अलग रक्खा था, उस वियोग जनित श्राप से ही रुक्मणी को यह तेरा १६ वर्ष का वियोग हुआ है। देख, पाप का फल कैसा मिलता है। जो दूसरों का वियोग करते हैं उनका अवश्य वियोग होता है।

❋ अठारहवां परिच्छेद ❋

मुनि महाराज के वचन सुनकर कुमार आनंद पूर्वक सीधा कनकमाला के महल में आया और विना नमस्कार किए बैठ गया। यह देखकर कनकमाला ने विचार किया कि अब मेरा मनोरथ अवश्य सफल होगा। इसने अपने मन से माता भाव को निकाल दिया है और मेरे रूप पर मोहित हो गया है। इसी कारण से इसने मुझे नमस्कार नहीं किया है। अब इस समय जो इस से कहूँगी वह अवश्य करेगा। ऐसा चितवन करके कहने लगी कि हे महायोग्य कामदेव, यदि तुम मेरे रमणीय और मनोहर वचनों के अनुसार काम करो तो मैं तुम्हें रोहिणी आदि समस्त मंत्र सिखलादूंगी। यह सुनकर कुमार मुस्करा कर कहने लगा क्या आजतक मैंने तुम्हारा कहना नहीं माना जो ऐसे शब्द कहती हो। कृपा करके मुझे मंत्र दो, मैं

तुम्हारा कहना अवश्य मानूंगा। यह सुनते ही काम से आकुल व्याकुल हुई कनकमाला ने बड़ी प्रसन्नता और प्रीति से कुमार को मंत्र दे दिए।

मंत्रों को विधिपूर्वक जानकर कुमार ने कनकमाला से कहा, हे पुण्यरूप जिस समय शत्रु ने मुझे शिला के नीचे रक्खा था उस समय आप ही मेरे शरण हुए थे दूसरा कोई नहीं। इस लिए आप ही मेरे माता पिता हो सो जो काम पुत्र के करने योग्य हो सो कहो, मैं करने के लिए तैयार हूँ।

इस प्रकार वज्रपात के वचन सुनते ही कनकमाला क्रोध से कुछ कहना चाहती थी कि कुमार नमस्कार करके अपने महल को चला गया। अब तो कनकमाला की बुरी दशा हो गई। वह विचारने लगी, कि हाय, मंत्र भी गए और इच्छा भी पूर्ण न हुई। इस पापी ने मुझे दिन दहाड़े लूट लिया। मेरी आशाओं को नष्ट कर दिया। हाय, हाय! अब तो जिस तरह बने इस दुष्ट का निग्रह करना चाहिए। बड़ी देर तक विचारती रही। तरह २ के मनसूबे बाँधती रही। अंत में किसी ने सच कहा है कि—"त्रिया चरित्र न जाने कोय, खसम मार के सती होय।" अपनी बुरी दशा करके बाल बिखरा कर धूलि में लपेटकर कुचों को नोंचकर, चीर को फाड़ कर, बुरा रूप बनाकर राजा के पास गई और कहने

लगी, प्राणनाथ ! जिस दुष्ट पापी को पाल पोष करके मैं ने इतना बड़ा किया, जिस नीचको मैं ने आप से युवराज पद दिलवाया, हाय, आज उसी पापात्मा ने मेरा यौवन भूषित रूप देखकर काम के वश होकर मेरी यह कुचेष्टा की है आप के पुण्यके प्रभाव से, कुलदेवी के प्रसाद से और मेरे भाग्य से मेरे शीलकी रक्षा हुई है, नहीं तो हे नाथ, आज आपके इस चिर पवित्र कुल को दाग़ लगजाता और मेरा मरण होजाता। यह किसी पुण्य का उदय है । अबतो मैं जब उस नराधम का मस्तक रक्त में लथपथ हुआ पृथिवी पर लोटता हुआ देखूंगी, तबही अपने जीवन को सच्चा समझूंगी ।

कनकमाला के इन वचनों को सुनकर राजा ने तुरंत अपने ५०० पुत्रों को बुलाकर एकांत में कहा कि पुत्रो यह प्रद्युम्न मेरा पुत्र नहीं है । यह किसी नीच कुल में उत्पन्न हुआ है । मैं इसे वन में से लाया था। अब जवान होकर यह तुम्हारी कीर्तिका घातक होगया है। उस रोज़ आप तो रथ में बैठकर आया और तुम सब पैदल आए, मुझे वह बात बहुत खटक रही है। इस लिए अब तुम जाओ और जिस तरह बने इसका शीघ्रही काम तमाम करदो मगर देखो किसी को खबर न होने पाए। पुत्र तो पहलेही से चाहते थे। अब पिता की आज्ञा पाकर तो जी में फूले न समाए।

❁ उन्नीसवां परिच्छेद ❁

पिता को प्रणाम करके ५०० पुत्र चलदिये और प्रद्युम्न कुमार को जल क्रीड़ा के बहाने से नगर के बाहर वापिका पर लेगए। वहां वे अपने वस्त्र उतार कर तथा दूसरे पहिन कर वापिका में कूदने के लिये वृक्षों पर चढ़ गए। उसी समय पुण्य के उदय से विद्या ने आकर कुमार के कान में लगकर उसको जल में कूदने से मना कर दिया। विद्या के वचन सुनते ही कुमार ने विद्या के बल से अपने जैसा एक दूसरा रूप बनाया और आप अदृश होकर वापिका के तट पर बैठकर कौतुक देखने लगा। इतने में वृक्ष के ऊपर चढ़े हुए प्रद्युम्न के विद्यामई रूप ने पानी में गोता लगाया। यह देख सबके सब विद्याधर पुत्र, चलो शीघ्र कूदो, पापी को अभी मार डालो, ऐसे शब्द कहते हुए एकदम कूदपड़े।

यह लीला देखकर निष्कपट कुमार चकित रहगया। किस कारण से ये मेरे शत्रु होगए, मैंने इनका क्या बिगाड़ा, मुझे ये क्यों मारने की ताक में लग रहे हैं? जान पड़ता है, पापिनी कनकमाला माता ने पिता के आगे विरूपक बनाकर झूठी सच्ची बातें कही होंगी, उसी की बातों पर विश्वास करके पिता ने इनको मुझे मारने की आज्ञा देदी होगी, अस्तु

कोई चिंता नहीं, मैं इन्हें अभी मज़ा चखाए देता हूँ। कुमार ने तुरंत एक बड़ी शिला लाकर वापिका को उस से ढकदिया और उन राजपुत्रों में से केवल एक को बाहर निकाल कर शेष को उसी वापिका में औंधे मुँह लटका दिया और उस एक बचे हुए से कहा, तुम जाओ और पिता से सारा हाल जो कुछ मैंने किया है ज्यों का त्यों कह सुनाओ।

उसने वैसा ही किया, राजा को जाकर सारा हाल कह सुनाया। राजा सुनते ही क्रोध के मारे आग बबूला होगया। उसने तुरंत बड़ी भारी सेना के साथ नगर से बाहर निकल कर प्रद्युम्न पर चढ़ाई की। प्रद्युम्न ने भी कालसंवर की सेना को देखकर अपने देवों को स्मरण किया और विद्या के प्रभाव से बड़ी भारी सेना बनाली। दोनों सेनाओं में बड़ी देर तक घोर संग्राम हुआ, परंतु अंत में कुमार ने कालसंवर की सेना को तितर बितर करदी। गजों के समूह को गजों से और घोड़ों को घोड़ों से मारडाले। रथों से रथ तोड़डाले और योद्धाओं से योद्धाओं को धराशायी करादिया।

जब कालसंवर की सारी सेना नष्ट होगई तब वह व्याकुल होकर नाना प्रकार की चिंता करने लगा। इतने में उसे अपनी रानी की विद्याओं का स्मरण आगया। उसी समय रण का भार मंत्री को सौंपकर रानी के पास पहुँचा और उस

से रोहिणी और प्रज्ञप्ति विद्याओं की याचना की। यह सुन कर कनकमाला स्त्री चरित्र बनाकर रोने लगी और आंसू बहाती हुई बोली, हे नाथ! उस पापी ने मुझे एक बार नहीं कई बार ठगा है। एक दिन मैंने प्यार में उसे अपनी दोनों विद्याएँ स्तनों में प्रवेश करके पिलादी थीं, हाय! मैं नहीं जानती थी कि यह जवानी में ऐसा दुष्ट होगा। ऐसा कहकर कनकमाला गला फाड़ कर रोने लगी।

राजा ने ये ढोंग देखकर रानी के सारे दुश्चरित्र जान लिये और मन में कहने लगा, अहो! स्त्री चरित्र कौन वर्णन कर सकता है। इसने मेरी विद्याएँ भी खोदीं और पुत्रभी खो दिया। हा, इस जीवन से क्या प्रयोजन, अबतो मरना ही भला है। ऊंची स्वासें लेता हुआ संग्राम भूमि की ओर चला और वहां पहुंचकर क्रोध से दुःखी होकर कुमार से स्वयं लड़ने लगा, पर जीत न सका। शीघ्र कुमार ने उसे नागफाँस से बांध लिया। पश्चात् कुमार लज्जा के मारे कुछ नीचा मुँह करके सोचने लगा कि युद्ध में मैंने इतनी सेना को मायावश मूर्छित कर दिया है अब कोई उत्तम पुरुष आकर मेरे पिता को छुड़ा दे तो अच्छा है।

इतने में ही नारदजी आकाश में नृत्य करते हुए और हर्षित होते हुए वहां आपहुँचे। उन्होंने आशीर्वाद दिया और

जानते हुए भी पूछा कि यह युद्ध क्यों हुआ। तब कुमार ने विनय पूर्वक निवेदन किया, महाराज मेरे पिताने माता के वचनों पर विश्वास करके मेरे मारने की तैयारी की थी। कृपा करके माता का दुश्चरित्र सुनिये, महात्मन् अब मैं पिता हीन होगया। अब मैं किसकी शरण लूं, कहांजाऊं, क्या करूं, ये दोनों निःसंदेह मेरे माता पिता हैं परंतु इन्होंने मेरे साथ घोर पाप किया है। नारद जी ने उत्तर दिया, बेटा! घबरा मत, तेरे सैकड़ों बन्धु हैं, तेरा परिवार कम नहीं। चल मेरे साथ, मैं तुझे तेरे असली माता पिता के पास लेजाऊंगा। तेरी माताकी एक सत्यभामा सौत है। उसके साथ उसका बड़ा विरोध है। तेरा वहां जाना ही उचित है। माता के दुश्चरित्र को क्या कहता है। स्त्री चरित्र कौन वर्णन कर सकता है। यह दुष्टनी कुपित हो कर अपने पिता, भ्राता, पुत्र, पति तथा गुरु को भी मार डालती है। तू कुछ आश्चर्य मत कर, अब शीघ्र मेरे साथ चल, मैं तेरे लिवाने को ही आया हूं। इसपर कुमार ने पिता को छोड़ दिया और सारी सेना को चैतन्य कर दिया। सब योद्धा उठकर पकड़ो पकड़ो, मारो मारो, कहने लगे। तब नारद जी बोले, हे शूरवीर योद्धाओ! इस युद्ध में तुम्हारा सबका पराक्रम देख लिया, अब तुम कुशलता से अपने नगर में जाओ, तुम्हें प्रद्युम्न कुमार ने जीव दान दिया है। यो

सब हाल जान कर अपने २ स्थान को चले गए। राजा कालसंवर भी चुपचाप मलीन मुख किए नगर में चला गया तथा ५०० कुमार भी गर्व रहित होकर महल में आगए। देखो पाप कभी छिपा नहीं रहता, कभी न कभी अवश्य खुल जाता है और इसका कैसा फल मिलता है।

❋ बीसवां परिच्छेद ❋

नारद जी के आग्रह करने पर कुमार चलने के लिए तैयार हुआ और माता पिता से आज्ञा लेने के लिए महल में गया, जहां राजा कालसंवर और रानी कनकमाला दोनों दुःखी बैठे थे। कुमार ने माता पिता को नमस्कार करके कहा, हे महाभाग्य पिता, मुझ पापी से जो अनिष्ट कार्य हुए हैं उनके लिए मैं क्षमा का प्रार्थी हूं। इससे अधिक मेरी मूर्खता और क्या कही जासकती है कि मैं ने अपनी माता के लिए (आपकी समझ में) ऐसा भाव विचारा, परंतु मैं आप का किंकर हूं, मुझ पर दयाभाव करो। हे माता, तू भी क्षमा कर, अब मैं अपने पिता के घर मिलने जाता हूं। मुझे आप दोनों आज्ञा दीजिए, आपकी आज्ञा के बिना न जाऊंगा। आप मुझे भूल न जाएँ। सदैव कृपादृष्टि रक्खें। मैं शीघ्र लौटकर आऊंगा।

आपको मेरे विषय में कुछ भी अंतर नहीं मानना चाहिए। कुमार की ये बातें दोनों लज्जा के कारण नीचा मुख किए सुनते रहे परंतु कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तो भी कुमार उन्हें नमस्कार करके तथा अपने भाइयों, परिवार के लोगों और मंत्रियों से मिलकर और मोह युक्त होकर नगर से बाहर निकला। नारद जी ने चलने के लिए एक अच्छा विमान तैयार किया, परंतु कुमार ने ज़ोर से उस पर अपने पैर रख दिए जिस से उसकी सारी संधियां टूट गईं और उस में सैकड़ों छिद्र होगए। तब कुमार परिहास करने लगा, जिस से नारद जी बड़े लज्जित होकर बोले, हे वत्स, अब तुमही सुंदर मज़बूत विमान बनाओ, मेरी वृद्ध देह में चतुराई कहां से आई। तुम तो सब विद्याओं में कुशल हो, सम्पूर्ण विज्ञान के ज्ञाता हो। नारद जी के कहने से कुमार ने एक बड़ा सुंदर विस्मयकारी विमान शीघ्र बनादिया जो सर्व गुण और शोभा कर संयुक्त था। दोनों उसमें बैठ गए। कुमार ने उसे आकाश में चढ़ाया और धीरे २ चलाना शुरू किया। नारद जी ने कहा, हे वत्स, तेरी माता तुझे देखने के लिए बड़ी व्याकुल हो रही है, शीघ्रता से विमान को चला। कुमार यह सुनकर अतिशय शीघ्र गति से चलाने लगा जिस से नारद जी बड़े आकुलव्याकुल हो गए, उनके बाल बिखर

कर उड़ने लगे और शरीर कांपने लगा। बड़े आकुलित होकर कहने लगे, बेटा, तू मुझे इस विमान में बिठाकर क्यों व्याकुल करता है। तेरे माता पिता तथा सर्व कुटुम्बी गण मुझ पर बड़ी भक्ति रखते हैं, फिर तू मुझे क्यों दिक़ करता है। कुमार ने उत्तर दिया, महाराज! जान पड़ता है आप का चरित्र भी कुटिलता युक्त होगया है। बड़ी मुश्किल की बात है, धीरे चलाऊं तब आपको नहीं रुचता, शीघ्र चलाऊं तब आपको नहीं अच्छा लगता। लो अब चलाताही नहीं, आप जाइए, मैं जाता ही नहीं। उसने वहीं आकाश में विमानको खड़ा कर दिया। नारद जी क्रोध को शांत करके बोले, मैं तुझे लेने आया हूं, इसीलिए तू इतना विलम्भ करता है, तुझे मालूम नहीं कि यदि माता का पराभव हो गया और तू पीछे से पहुंचा तो फिर क्या लाभ? और एक बात और भी है, तेरे माता पिता ने तेरे लिए बहुतसी सुंदर कन्याओं की याचना कर रक्खी है, यदि तू न पहुंचा तो उन सबको तेरा छोटा भाई परणालेगा।

यह सुनते ही कुमार ने हर्षित होकर विमान को चलाया। रास्ते में अनेक सुंदर वन, उपवन, नदी, सरोवर, पशु, पक्षी आते थे। नारदजी कुमार को वे सब दिखलाते जाते थे। इस प्रकार आश्चर्य युक्त पृथिवी की सैर करते हुए वे दोनों कितनी ही दूर निकल गए।

❋ इक्कीसवां परिच्छेद ❋

चलते २ उन्होंने एक जगह बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना देखी, जिस में हजारों राजा और अगणित घोड़े, रथ और पयादे थे। चक्रवर्ती की सेना के समान उस सेना को देख कर प्रद्युम्न कुमार ने बड़े आश्चर्य के साथ नारदजी से पूछा। हे नाथ! यह किस का शिविर पड़ा हुआ है? नारदजी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया हे वत्स, तुम इसी के लिये यहां लाए गए हो। जब तुम पैदा भी नहीं हुए थे तो हस्तिनापुर के कुरुवंशी राजा दुर्योधन ने अपनी गर्भस्थ पुत्री उदधिकुमारी को तुम्हारे लिए देनी कर दी थी, परंतु जब उत्पन्न होते ही तुम्हारा हरण हो गया और तुम्हारे जीते रहने की किम्वदंती भी यहां कहीं सुनाई नहीं पड़ी, तब उस रूपलावण्य की खानि सच्चरित्रा विद्यावती, विनयवती उदधिकुमारी को उसके पिता ने तुम्हारे छोटे भाई, सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार को देने के लिए भेजी है और उसी के साथ में यह चतुरंगिणी सेना आई है।

कुमार को कुमारी के देखने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई। उसने तुरंत नारदजी से आज्ञा लेकर और एक भील

का रूप बनाकर सेना में प्रवेश किया। उसका मुँह सूखा सा था, दांत बड़े २ थे, शिर पर का जूट बेल से लिपटा हुआ था। उसके भयंकर, बीभत्स और रौद्र रूप को देख कर दुर्योधन की सेना के राजकुमार हंसने लगे और बोले, अरे पापी क्यों सामने खड़ा है, चल आगे बढ़, रास्ता छोड़।

भील के रूप में कुमार ने कुपित होकर सेना से कहा, विदित हो कि मैं श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा से कर लेने के लिए यहां रहता हूं, सो मुझे कर देकर यहां से जाने पाओगे। कृष्ण का नाम सुनते ही सब बोल उठे, अच्छा तुझे जो चाहिए सो ले ले।

भील—जो आप के पास सर्वोत्तम वस्तु हो सो दे दीजिए।

कौरव योद्धा—अरे सर्वोत्तम वस्तु तो राजकुमारी उदधि कुमारी है, क्या तू उसे ही लेना चाहता है?

भील—हे शूरवीरो, उसे ही दे दो। निश्चय जानो कि मुझे संतुष्ट करने से श्रीकृष्ण भी संतुष्ट होंगे और तुम लोग भी निर्भय इस जंगल से निकल सकोगे।

कौरव योद्धा—अरे दुष्ट, पापी छोटा मुँह बड़ी बात, कहां तू नीच जाति का दुराचारी कुरूप भील, कहां वह सुंदरमुखी उदधिकुमारी, बस, हट ज़ियादा बक २ मत कर। किसी पर्वत

पर से आकर गिर पड़, हम तुझे कदापि कर नहीं देंगे। यदि श्रीकृष्ण जी नाराज़ भी हो जाएँ तो कुछ परवा नहीं। यह कहकर सब के सब राजपुत्र उस भीलको अपने चारों तरफ़ फैले हुए धनुषसे रोकने लगे। तब भील वेषधारी कुमार ने सारी सेनाको शीघ्र ही अपने धनुष से वेष्ठित कर लिया और तुरंत अपनी विद्याओं का स्मरण करके अपने समान भीलों की एक बड़ी भारी सेना तैयार की, जिन्हों ने कौरव योद्धाओं को चारों ओर से घेर लिया। अब तो परस्पर घोर युद्ध होने लगा। भीलों ने पत्थरों और बाणों की वर्षा से राजाओं को इस भांति मारा कि उनके घोड़े सवारों को पटक कर इधर उधर सेना में फिरने लगे और लोगों को कुचलने लगे, हाथी चिंघाड़ मारते हुए भय के मारे रणभूमि से भागने लगे और बड़े २ रथ जर्जर होकर टूटने लगे। भावार्थ भीलों के समूह ने कौरवों की सेना को जीत लिया और शूरवीरों ने रणभूमि छोड़ दी।

अब कुमार उदधिकुमारी को अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर आकाश में उड़ गया और उस बेचारी को जो भीलों के भय से थर २ कांप रही थी नारदजी के समीप विमान में बिठा-कर आप कौरवों की ओर देखने लगा। उसके विकराल रूप को देख कर कुमारी गला फाड़ २ कर चिल्लाती थी, हे पृथ्वी, तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं उस में समा जाऊँ। हे दैव,

तू ने क्या किया, मुझे किस पापी, दुरात्मा के फंदे में डाल-दिया, हे जननी, तू कहां गई, तूने मुझे जन्म देकर क्यों पाप कूप में डाला। हे पिता, आप कहां अदृश्य हो गए। हे पूज्य पिता नारद जी, क्या आप को भी मुझ अबला पर दया नहीं आती, महाराज, मौन क्यों धारण कर रक्खा है, मेरी रक्षा क्यों नहीं करते, मैंने क्या अपराध किया है। हे विधाता, ये मेरे किन अशुभ कर्मों का फल है। हे यमदेव, कृपा कर मुझे शीघ्र दर्शन दो, अब मैं इस जीवन से निराश हो गई। तद-नंतर हाहाकार करने लगी।

जब नारद जी ने देखा कि अब यह मरने का निश्चय कर चुकी है, तब बोले बेटी, शोक मत कर, साहस कर, यह वही रुक्मणीनंदन है जो तेरा पति होने वाला था, यह विद्याधरों के देश से तेरे लिए ही आया है। अतएव घबरा मत, शोक को त्याग दे। सुंदरी को इस प्रकार आश्वासन देकर प्रद्युम्न से बोले, बेटा सदा क्रीड़ा अच्छी नहीं लगती, हंसी करना भी सदा अच्छा नहीं होता। अब कौतुक और हास्य को छोड़ कर अपने मनोहर रूप को दिखलाओ और इस खेद खिन्न हुई सुंदरी को शांति प्रदान करो।

नारद जी के वचन सुन कर कुमार ने सब के मन को हरण करने वाला अपना असली सुंदर, मनोहर रूप धारण

कर लिया, जिसे देखकर वह मृगनयनी, अत्यंत प्रसन्न हुई। इसी प्रकार कुमार भी उसके रूप लावण्य को देखकर अंग में फूला न समाया।

❀ बाईसवां परिच्छेद ❀

इसके अनंतर तीनों वहां से चलदिये और थोड़ीही देर में द्वारिका नगरी में पहुंचे। नारदजी ने वहां का सारा वृत्तांत कुमार को सुनाया। उसे सुनते ही कुमार ने नारद जी से नगरी देखने की इच्छा प्रगट की और कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जाकर देख आऊं। नारदजी ने उत्तर दिया, हे वत्स, तू बड़ा चपल है, तेरा नगरी में अकेला जाना ठीक नहीं, तू चपलता किए बिना न रहेगा, तिसपर यादव गण भी अवश्य उपद्रव करेंगे। कुमार ने उत्तर दिया, हे तात, मैं अब की बार कुछ भी चपलता न करूंगा, अभी क्षण भर में देख कर वापिस आजाऊंगा यह कह कर विमान थाम दिया और उन दोनों को वहीं छोड़ कर स्वयं द्वारिका की ओर चल दिया।

ज्योंही उसने द्वारिका की पृथ्वी पर पैर रक्खा, सत्य भामा के पुत्र भानुकुमार के दर्शन हुए जो नाना प्रकार की विभूति से संयुक्त घोड़े पर सवार था। प्रद्युम्न ने अपनी विद्या

के बल से एक अति सुंदर शीघ्रगामी घोड़ा बनाया और आप स्वयं बहुतही बूढ़ा, हाथ पैर से कांपता हुआ घोड़ा बेचने वाला बन गया। घोड़े को हाथ से पकड़े हुए भानुकुमार के निकट गया। भानुकुमार घोड़े को देखते हीं उस पर मोहित होगया और बुड्ढे से उसका मूल्य पूछने लगा। बुड्ढे ने उत्तर दिया, महाराज यह घोड़ा मैं आप के लिए ही लाया हूं, इसका मूल्य एक करोड़ मुहर लूंगा। यह इसी मूल्य का घोड़ा है, आप इस की परीक्षा करके देखलें। भानुकुमार परीक्षार्थ घोड़े पर सवार होगया और उसे इधर उधर फिराने लगा। मायामई घोड़े ने सीधे और टेढ़े पैरों से चलकर क्षण मात्र में कुमार के मन को रंजायमान कर दिया, परंतु थोड़ी देर में उसने ऐसी गति धारण की और इतनी वेगता से चलने लगा कि भानुकुमार के समस्त वस्त्राभूषण पृथ्वी पर गिरगए और कुमार को भी जमीन पर पटक दिया और बुड्ढे के पास जा-कर खड़ा हो गया। बुड्ढा खिलखिलाकर हंसने लगा और कहने लगा कि बस राजकुमार, मैंने जानलिया कि तुम अश्व चालनकी शिक्षा में निरे मूर्ख हो। राजकुमारों की परीक्षा करते समय पहिले उनकी अश्वकला ही देखी जाती है। जब तुम इसीमें शून्य हो तो राज्य क्या करोगे। राजकुमार ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, अरे मूर्ख क्यों वृथा हंसता है, अपने को तो देख

तुझ से तो कुछ भी नहीं हो सकता। जरा से तेरा शरीर जर्जर हो रहा है। बुड्ढे ने कहा निस्संदेह मैं शक्ति हीन हूं पर हाँ इतना जरूर है कि यदि आप या आपके ये सुभट मुझे उठाकर घोड़े पर बिठादें, तो मैं अपना कुछ कौशल्य दिखला सकता हूं। वहां क्या देर थी, तुरंत आज्ञा हो गई। वीर सुभट बुड्ढे को उठाकर घोड़े पर बिठलाने लगे, परंतु ज्यों ही वह घोड़े की पीठ के पास पहुँचा त्योंही उसने अपना शरीर ऐसा भारी कर लिया कि उन योद्धाओं से न संभल सका और उनको मर्दन करता हुआ उन्हीं के ऊपर गिर पड़ा। कई बार उद्योग किया, कुमार ने भी स्वयं ज़ोर लगाया परंतु हरबार उसने सब को ज़मीन पर गिरा दिया, अंत में भानुकुमार की छाती पर पैर रखकर घोड़े पर चढ़ गया और क्षण भर में उस घोड़े को मनोज्ञ गति मे चलाकर, और अपनी अश्वशिक्षा की कुशलता दिखला कर आकाश में उड़ गया। भानुकुमार आदि समस्त राजपुत्र ऊपर को देखने लगे परंतु उनके देखते २ प्रद्युम्नकुमार घोड़े समेत अदृश्य हो गया।

भानुकुमारको इसप्रकार पराजित व लज्जितकरके अपनी माता का बदला लेने वाला प्रद्युम्नकुमार आगे बढ़ा और सत्यभामा के बगीचे में पहुंचा। वहां अनेक मायामई घोड़े बना कर उनके द्वारा उस सुंदर बगीचे को क्षणभर में नष्ट भ्रष्ट

करा दिया । घोड़ों ने तमाम वृक्षों को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया, पुष्पों और फलों को तोड़कर गिरादिया और तालाब को सुखा दिया । इसी तरह सत्यभामा के एक दूसरे बग़ीचे को भी मायामई बंदरों द्वारा जंगल करा दिया । आगे चलकर भानुकुमार के विवाह के मंगल कलशों से भरा हुआ स्त्री समूह सहित एक उत्तम रथ जारहा था । उसे देखते ही कुमार ने अपनी विद्या द्वारा एक विचित्र रथ बनाया जिस में गधा और ऊंट जुते हुए थे और उसे सत्यभामा के रथ की ओर बढ़ा कर उसके रथ को चूर्ण कर डाला, और कलशों को पटक दिया, फिर रथ को गली २ में फिराने लगा, जिसे देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था और वे उसके विषय में भांति २ की कल्पनाएँ करते थे ।

वे मेंढ़े को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसके विषय में मेंढ़े वाले से पूछने लगे । मेंढ़े वाले ने कहा, महाराज यह बड़ा बलवान मेंढ़ा है, बड़ा विषम और दुर्जय है । वसुदेव जी बोले, यदि यह बलवान् है तो इसे मेरी जंघा पर टक्कर लगाने दो । मेंढ़े वाला हिचकिचाया परंतु वसुदेव जी के आग्रह से उसने मेंढ़े को छोड़ दिया । मेंढ़े ने जाकर ऐसी ज़ोर से टक्कर लगाई कि वसुदेव जी गिर पड़े और बेहोश हो गए । यादव गण शीतोपचार करने लगे, इतने में प्रद्युम्न कुमार आंख बचाकर वहां से चलता हुआ ।

वहां से निकल कर एक युवक ब्राह्मण का रूप धारण करके सत्यभामा के मंदिर में पहुंचा और भोजन की याचना की। दैवयोग से उस दिन शहर के अन्य ब्राह्मणों को भी सत्यभामा ने पुत्र के विवाह की खुशी में निमंत्रित कर रक्खा था। सत्यभामा ने उसकी याचना सुनकर अपने आदमियों को आज्ञा दी कि इसे भर पेट भोजन करा दो। महाराज भोजन करने लगे, सत्यभामा भी निकट बैठी थी। उसकी भूख का क्या पार रहा, न जाने कभी खाना मिला था या नहीं। पाचक परसते २ थक गए, पर ब्राह्मण देवता की क्षुधा न मिटी। जितना रसोई में अन्न था सबका सब समाप्त हो गया। घर में कुछ भी न रहा मगर वह "लाओ लाओ" ही करता रहा और सत्यभामा से कहने लगा कि तू बड़ी कृपण है, अरी दुष्टनी दूसरे लोग तुझ से कैसे संतुष्ट होंगे, जानपड़ता है कि तुझ जैसी कृपणा का अन्न मेरे उदर में ठेरेगा नहीं, ले अपना अन्न वापिस ले। यह कहकर सबका सब अन्न सबके सामने वमन कर दिया जिस से सारा घर भर गया, फिर जल पीकर घर से बाहर निकल गया।

❀ तेईसवां परिच्छेद ❀

थोड़ी दूर चल कर प्रद्युम्न कुमार अपनी माता रुक्मणी के महल में पहुंचा। यहां उसने एक अति कुरूप क्षीण शरीर क्षुल्लक का रूप धारण कर लिया। रुक्मणी महारानी जिन मंदिर के सामने कुशासन पर बैठी थी और बहुत सी स्त्रियां उन्हें घेरे हुए थीं। क्षुल्लक महाराज को आया देख कर वह जिन धर्मानुरागनी देवी नियम पूर्वक खड़ी होगई और महाराज के चरण कमल को नमस्कार कर के तिष्ठने के लिए प्रार्थना करने लगी। मूर्ख क्षुल्लकराज "दर्शनविशुद्धि" कह कर रुक्मणी के दिए हुए दिव्य सिंहासन पर बैठ गए। रुक्मणी भी आज्ञा पाकर सामने विनय पूर्वक बैठ गई और सम्यक्त्व सम्बंधी चर्चा करने लगी। थोड़ी देर धर्म चर्चा करके क्षुल्लक जी कहने लगे, हे देवी! मैंने पहिले जैसी तेरी प्रशंसा सुनी थी वैसी तू इस समय नहीं दीखती है। मैं कितना रास्ता चल कर आया और श्रम से थक गया, पर तू ने विवेक रहित होकर धर्म चर्चा करनी आरम्भ कर दी। मेरे खाने पीने की तनिक चिंता न की, और तो क्या पैर धोने के लिए थोड़ासा गर्म जल भी न दिया। क्षुल्लक के वचन सुनकर रुक्मणी बड़ी

लज्जित हुई और मन ही मन अपने को धिक्कारने लगी।

उसने तुरंत सेवकों से गर्म जल करने के लिए कहा पर क्षुल्लकजी ने तो अग्नि को स्तम्भित कर रक्खा था। लाख उद्योग करने पर भी न जली। तब रुक्मणी स्वयं उठी और आग जलाने लगी। उसका सारा शरीर पसीने से लथ पथ होगया, बाल बिखर गए, आंखों से पानी गिरने लगा पर आग न जली। इतने पर भी रुक्मणी के चित्त में विकार उत्पन्न न हुआ। तब क्षुल्लक महाराज ने कहा, हे माता यदि गर्म पानी नहीं है तो न सही, खाने ही को दे, मैं भूख के मारे मरा जाता हूं, जल्दी कर। रुक्मणी रक्खा हुआ पक्कान्न तलाश करने लगी पर महाराज ने पक्कान्न भी लोप कर दिया था। उसे केवल कृष्ण जी के १० लड्डू मिल गए। जिन लड्डुओं को कृष्ण जी केवल एक २ कर के खाते थे और एक भी कठिनता से पचा पाते थे, उन्हें ये क्षुल्लक देवता क्षणमात्र में पा गए। १० में से एक भी न बचा, फिर भी "और लाओ, और लाओ" कहते ही गए। रुक्मणी दूसरे घर में तलाश करने को गई पर जब कुछ न मिला तो बड़ी व्याकुल होने लगी। तब महाराज बोले बस, माता मैं संतुष्ट हो गया, अब रहने दे, और आचमन कर के बाहर उसी आसन पर आ विराजे।

इसी समय श्री सीमंधर भगवान ने कुमार के आगमन के समय के सूचित करने वाले जो २ चिन्ह वतलाए थे वे सब प्रगट होगए। महल के आगे का सूखा अशोक वृक्ष फल फूलों से लद गया। सूखी हुई बावड़ी जल से भर गई, असमय वसंत ऋतु आगई। ये बातें रुक्मणी को बड़ी प्यारी मालूम हुईं। उसके शरीर में रोमांच होआया। स्तनों से दूध झरने लगा, पर पुत्र नहीं आया। वह मन ही मन में अनेक संकल्प विकल्प करने लगी। क्या यह क्षुल्लक ही इस वेष में मेरा पुत्र है? पर यह इतना कुरूप क्यों है? मेरा पुत्र तो बड़ा रूपवान, बलवान होना चाहिए? पर यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रूपवान तथा कुरूप होना पुण्य और पाप के प्रभाव पर निर्भर है। इस प्रकार अनेक विकल्प करती हुई रुक्मणी देवी ने क्षुल्लक महाराज से उन के माता, पितादि की कथा सुनने की इच्छा प्रगट की। क्षुल्लक जी ने यों ही गोलमाल उत्तर दे दिया कि श्रीकृष्ण नारायण तो हमारे पिता और आप हमारी माता हैं क्योंकि श्रावक, श्राविकाही यतियों के माता, पिता कहे जाते हैं।

यह वार्ता हो ही रही थी कि सत्यभामा की भेजी हुई दासियां नाई सहित रुक्मणी की चोटी लेने के लिए उसके घर के पास गली में गाती हुई आ पहुँचीं। उनके शब्द सुनते ही रुक्मणी का मुँह पीला पड़गया और वह आंसू बहाने लगी।

ये देखकर क्षुल्लकजी ने शोक के उद्वेग का कारण पूंछा। तब रुक्मणी ने सारा वृत्तांत सुनाया और कहा कि नारद जी ने मुझे बड़ा धोखा दिया, वे मेरे मरने में आड़े होगए, मैं मरना ही चाहती थी कि उन्हों ने आकर पुत्र के आगमन के शुभ समाचार मुझे सुनाकर मरने से रोक दिया। हाय अब क्या करूं, दोनों ओर से गई, पुत्र भी न आया और मैं भी न मरी। अब मेरे जीवन को धिक्कार है। क्षुल्लक जी ने माता को धैर्य दिया और यह कहकर कि तेरा पुत्र जो कार्य करता, क्या मैं नहीं कर सकता, सत्यभामा की दासियों के सामने इस प्रकार विक्रिया करने लगे।

उन्हों ने रुक्मणी को लोप करदिया और एक माया मई रुक्मणी बना कर सिंहासन पर विराजमान किया और आप स्वयं कंचुकी का रूप धारण करके सिंहासन के आगे खड़े हो गए। दासियों ने सविनय नमस्कार करके केशोंकी प्रार्थनाकी। रुक्मणी ने तुरंत अपना मस्तक उघाड़ दिया। नाई ने छुरा निकाला और तेज़ी से चलाने लगा पर क्षुल्लक वेष में कुमार ने माया से ऐसी लीला की कि नाई ने पहिले अपनी नाक और अंगुलियां काट लीं फिर दूसरी स्त्रियों के नाक कान भी काट लिए पर किसी को भी मालूम न हुआ।

वे नाचती, कूदती, हुई रुक्मणी की चोटी लेकर सत्य-

भामा के पास पहुँचीं और रुक्मणी के वचनों और प्रतिज्ञा की बड़ी प्रशंसा करने लगीं । पर सत्यभामा ने उनके अंग कटे हुए देखकर उन से इस का कारण पूछा । वे अपनी नाक को साफ़ देख कर भौंचकित रह गईं । अब तो सत्यभामा के क्रोध का पार न रहा । उसने तुरंत अपने मंत्रियों को आज्ञा दी कि इन नाई तथा दासियों को बल्देव जी के पास सभा में ले जाओ और उस दुष्टनी रुक्मणी ने जो विडम्बना की है उसका उन्हें पूरा २ हाल कह सुनाओ । मंत्रियों को हुक्म मिलने की देर थी । उन्होंने तुरंत जाकर सारा हाल बल्देव जी से कहदिया । बल्देवजी यह सुनतेही क्रोध से लाल पीले होगए और यह कह कर कि इस पापिनी को अभी मज़ा चखाता हूं, अपने नौकरों को रुक्मणी का घर लूट लेने के लिए भेजा ।

❋ चौबीसवां परिच्छेद ❋

इधर सत्यभामा की स्त्रियों की विडम्बना होने पर रुक्मणी ने निश्चय कर लिया कि यह क्षुल्लक ही मेरा पुत्र है और क्षुल्लक से कहने लगी कि निश्चय से तू ही मेरा पुत्र है, तुझे ही नारद जी लाए हैं । हे पुत्र ! अब क्यों माता को साक्षात दर्शन नहीं देता, विलम्ब

क्यों कर रहा है। शीघ्र अपनी माया को समेट कर प्रगट हो। मेरे नेत्र तेरे दर्शनों को तरसते हैं।

माता के वचन सुनकर कुमार बोला, हे माता! मुझ कुरूप पुत्र से तुझे क्या लाभ होगा, उल्टी लज्जा और घृणा होगी, अतएव मुझे जाने दे, मैं कहीं बाहर चला जाऊंगा। पर माता का प्रेम तो आदर्श प्रेम होता है। कुरूप से कुरूप और दुष्ट से दुष्ट पुत्र से भी माता का हृदय शांत होजाता है। उसे वह चांद सा ही दिखाई देता है। रुक्मणी ने उत्तर दिया बेटा तू जैसा है वैसा ही सही, मगर कहीं जा मत। अब ब्रह्मचारी क्षुल्लक जी ने अपना सुंदर उत्कृष्ट रूप धारण कर लिया और माता के चरण कमलों में गिर पड़ा। माता ने शीघ्र अपने प्यारे आंखों के तारे पुत्र को उठाकर छाती से लगा लिया और बारम्बार प्यार करके अपने सुख दुख की वार्ता करने लगी।

माता पुत्र के अतिशय सुंदर रूप को बार २ देखती थी परंतु तृप्त न होती थी। उसके हर्ष और आमोद का पार न था। उस समय संसार में उसके समान शायद ही कोई दूसरा सुखी हो।

कुमार अनेक रूप धारण कर २ के माता के चित्त को प्रसन्न करता था। कभी गोद का बालक बन जाता था और

तोतली वोली वोलने लगता, कभी घुटनों के वल चलता, कभी खड़ा होने का उद्योग करता पर गिर पड़ता, कभी रोने लगता, कभी हंसने लगता। इस प्रकार वहुत समय तक वह अपनी जननी को पुत्र के सुख का अनुभवन कराता रहा। फिर वह अपने असली रूप में आगया।

इतने में वल्देवजी के भेजे हुए नौकर गली में आ पहुँचे। माता को वड़ी घवराहट हुई, पर कुमार ने उसे आश्वासन दिया और शीघ्रही एक नौकर को छोड़ कर शेष को दरवाज़े पर ही कील दिया। उस एक ने तुरंत जाकर वल्देवजी से रुक्मणी की मंत्र विद्या का हाल सुनाया। यह सुनते ही वल्देवजी के नेत्र क्रोध से अरुण होगए। वे स्वयं रुक्मणी के महल की ओर चले पर कुमार ने उन्हें भी एक शेर का रूप धारण कर के भूमि पर गिरा दिया और वाहर से ही वापिस लौटा दिया।

❋ पच्चीसवां परिच्छेद ❋

रुक्मणी अपने पुत्र का पराक्रम देख कर वड़ी प्रसन्न हुई और कहने लगी हे पुत्र! तुम मेरे निष्कारण वंधु नारदजी को कहां छोड़ आए। उन के मुझे शीघ्र समाचार सुनाओ। कुमार ने उत्तर दिया, माता

वे आकाश में ऊपर विराजते हैं। उनके पास आपकी (मेरी) वहू भी है। मैंने हस्तिनापुर के राजा दुर्योधन की पुत्री उदधि-कुमारी को मार्ग में कौरवों से जीतकर लेली है।

इसके पश्चात् कुमार ने भानुकुमार का तिरस्कार, सत्य भामा के वगीचे तथा वन का विनाश, रथ का तोड़ना, मेंढे स वसुदेवजी की टांग तुड़ाना और भोजन वमन करके सत्य-भामा की विडम्बना करना आदि सब लीलाएं माता को कह सुनाई। ये बातें सुनकर रुक्मणी को बड़ा आनंद हुआ और कहने लगी कि बेटा, उन्हें शीघ्र यहां ले आ और मुझे दिखला।

कुमार—माता, अभी मैं यहां किसी से भी नहीं मिला।

माता—तो बेटा, जा अपने पिता तथा यादवों से राज-सभा में मिल आ। तेरे पिता श्रीकृष्ण महाराज वहीं यादवों से घिरे हुए बैठे होंगे। प्रणाम करके अपना परिचय दे देना।

कुमार—माता, यह बात तेरे पुत्र के योग्य नहीं है। मैं स्वयं जाकर कैसे कहूं कि मैं आपका पुत्र हूं। मैं पहिले पिता तथा बंधुओं से युद्ध करके नाना प्रकार के वाक्यों से उनकी तर्जना करके अपना पराक्रम दिखलाऊंगा पीछे अपना नाम प्रगट करूंगा। तब वे स्वयं सब मुझे जान लेंगे अब घर २ जाकर किस २ से अपना हाल कहता फिरूं।

माता-बेटा यह तो ठीक है, पर यादव लोग बड़े बलवान हैं। वे तुझ से कैसे जीते जावेंगे।

कुमार-माता इस विषय की तू कुछ चिंता मत कर, तू अभी देखेगी कि श्री नेमनाथ को छोड़ कर और सब यदुवंशी कैसे बलवान हैं। हां तू एक बात मेरी मान ले। तू मेरे साथ विमान में बैठने के लिए चल, बस, कृपा करके शीघ्र चल यही मैं तुझ से याचना करता हूं।

रुक्मणी कुछ सोच में पड़ गई पर अंत में उसने चलना स्वीकार करलिया। स्वीकारता पाते ही कुमार ने माता को हाथों से उठा लिया और आकाश में लेगया और यादवों की राज्यसभा के ऊपर ठहर कर बल्देवजी तथा कृष्णजी के सन्मुख होकर बोला, हे यादवो! हे भोजवंशियो! हे पांडवो! और हे कृष्ण की सभा में बैठे हुए सुभटो! लो देखो, मैं विद्याधर भीष्मराज की पुत्री, श्रीकृष्ण की प्यारी साध्वी स्त्री रुक्मणी देवी को अकेला हर कर ले जाता हूं, यदि तुम में कुछ शक्ति हो तो आकर मुझ से छुड़ा ले जाओ। तुम सब मिल कर युद्ध करो, मैं तुम से युद्ध किए बिना न जाऊंगा। युद्ध के पश्चात् कृष्णजी की भामिनी को विद्याधरों के नगर में ले जाऊंगा, पर मैं चोर नहीं हूं, स्वेच्छाचारी नहीं हूं, और व्यभिचारी भी नहीं हूं।

इस अपरिचित पुरुष के ऐसे वचन सुनते ही सारी सभा में खलबली मच गई। यह कौन है, क्या है, होने लगा। सारे यादवगण तथा शूरवीर सुभट क्रोध से विह्वल होगए। तुरंत रण भेरी बजवाई गई। बात की बात में सारी सेना सजधज कर रणागन में जमा होगई और शीघ्रही कूच का हुक्म बोला गया। समस्त वीर, योद्धा, हाथी सवार, घुड़सवार, रथसवार तथा पैदल लैन बांधकर चलने लगे। बाजे बजने लगे। हाथियों की चिंघाड़ से, घोड़ों की हिनहिनाहट से चारोंओर कोलाहल मचगया। उधर कुमार ने भी रुक्मणी को नारदजी तथा बहू के समीप विनीत भाव से बिठाकर कृष्ण जी की सेना के समान एक बड़ी भारी माया मई सेना बनाई।

छब्बीसवां परिच्छेद

दैव योग से उन दोनों सेनाओं का बहुत जल्दी बीच में ही संघट्ट हो गया और घोर युद्ध होने लगा। हाथी सवार हाथी सवारों में जुट गए, घुड़ सवार घुड़ सवारों से लड़ने लगे, पैदल पैदलों के साथ भिड़गए और रथवाले रथवालों के साथ लड़नेलगे। इस प्रकार सब के सब शूरवीर युद्ध करने लगे। धड़ाधड़ सिर कटने लगे, छत्र चंवर टूटनेलगे, घोड़े थक २ कर गिरनेलगे, रथ जर्जर होगए। कभी कुमारकी सेना कृष्णकी सेनाको हटा

देती, कभी कृष्ण की सेना कुमारकी सेना को गिरा देती। इस तरह यह घोर संग्राम बहुत देर तक होता रहा, पर अंत में प्रद्युम्न ने अपनी माया से पांडवादि शूरवीरों को बल्देवादि सहित मारडाला।

बड़े भाई की मृत्यु के समाचार सुनकर कृष्णजी बड़े क्रोधित हुए। उन्हों ने अपने रथको कुमारकी ओर शीघ्रता से बढ़ाया और बंधुवों के वियोग से उत्तेजित होकर शत्रुको बल पूर्वक नष्ट करने की इच्छा करने लगे। परंतु उसी समय उनकी दाहिनी आंख, और दाहिनी भुजा फड़कने लगी जिस से उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि अब बंधुजनों के नष्ट होनेपर क्या इष्ट प्राप्ति होगी।

कुमार के निकट पहुँचते ही उनका हृदय स्नेह से भर आया और स्वयं प्रीति उत्पन्न होगई। तब उन्होंने कुमारसे कहा कि हे विलक्षण शत्रु, यद्यपि तूने मेरा सर्वनाश करदिया तथापि तुझ पर न जाने क्यों मेरा अंतरंगस्नेह बढ़ता जाता है अतएव तू मेरी गुणवती भार्या को मुझे देदे और मेरे आगे से जीता हुआ कुशल पूर्वक चला जा। कुमार ने हंसकर उत्तर दिया, हे सुभट-शिरोमणि, यह कौनसा स्नेह का अवसर है, यह मारने काटनेका समय है। यदि तुम युद्ध नहीं करसकते तो मुझ से कहो कि हे धीरवीर! मुझे स्त्री की भिक्षा प्रदान

करो। ऐसे तीक्ष्ण कठोर वचन सुनकर श्री कृष्ण जी धनुप को खींचकर शीघ्रता से शत्रु पर टूट पड़े। कुमार ने भी अपना अर्थ चंद्र चक्र चलाया और उनके धनुप को तोड़डाला। कृष्ण ने दूसरा धनुप धारण किया पर कुमार ने उसे भी तोड़डाला।

अब कुमार हंसी की बातों से नारायण को ताड़ना देने लगा, जिससे दुखी होकर कृष्ण जी कुमार पर बड़े तीक्ष्ण बाण चलाने लगे।

भावार्थ दोनों ने एक दूसरे पर अपनी २ विद्या के बल से अनेक प्रचंड बाण चलाए पर कृष्ण जी ने जो शस्त्र कुमार पर चलाए वे यद्यपि अमोघ थे परंतु व्यर्थ ही गए क्योंकि यह एक नियम है कि जितने देवोपनीत बाण होते हैं वे अपने कुल के ऊपर कभी नहीं चलते। अब कृष्ण जी को बड़ी चिंता हुई। यह निश्चय करके कि बिना मल्लयुद्ध किए यह शत्रु नहीं जीता जा सकता, वे रथ से कूद पड़े। कुमार भी पिता को देख कर रथ से उतर पड़ा और शीघ्रता से आगे बढ़ा। दोनों को मल्ल युद्ध के लिए तैयार देख कर विमान में बैठी हुई रुक्मणी और उदधिकुमारी ने नारदजी से कहा हे महाराज, अब आप इन्हें रोकने में विलम्ब न करें, इस बाप बेटे की लड़ाई से हमारी सर्वथा हानि है।

नारदजी शीघ्र ही आकाश से उतर कर इन शूरवीरों

के बीच में जा खड़े हुए और श्रीकृष्ण से कहने लगे, हे माधव, यह आपने क्या विचारा जो अपने पुत्र से ही युद्ध ठान लिया, यह तो आप का प्यारा पुत्र प्रद्युम्न है, जिसे दैत्य हर कर ले गया था और जो राजा कालसंवर के यहां यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ है। यह तो १६ वर्ष के पश्चात् आप से मिलने को आया है। फिर कुमार से कहने लगे, हे कामकुमार तुम भी अपने पिता के साथ क्या करने लगे। क्या यह तुम्हें उचित है? कदापि नहीं, नारद मुनि के यह वचन सुन कर कृष्णजी युद्ध चेष्टा को छोड़ कर तुरंत मिलने के लिए आगे बढ़े। कुमार भी आगे बढ़ कर पूज्य पिता के चरणों में गिर पड़ा। पिता ने पुत्र को उठाकर गले से लगा लिया और संयोग सुख में मग्न होकर नेत्र बंद करलिए। उस समय उन दोनों को जो आनंद प्राप्त हुआ वह किसी प्रकार भी लेखनी द्वारा प्रगट नहीं हो सकता।

थोड़ी देर के पश्चात् नारदजी ने शहर में चलने के लिए कहा। कृष्णजी सेना के नष्ट होने के कारण बड़े दुःखी होरहे थे। उन्हों ने एक लम्बी सांस खींचकर उत्तर दिया, महाराज, मेरी सारी सेना नष्ट होगई, कोई भी नहीं बचा, केवल या तो मैं हूं या श्री नेमनाथ भगवान या यह मेरा पुत्र प्रद्युम्न कुमार। बतलाइए अब मैं नगर प्रवेश के समय क्या शोभा

कराऊं। जब न सेना है और न प्रजा तो फिर किस के ऊपर छत्र धारण किया जाएगा। कृष्ण जी के मुख से ऐसे दीनता के वचन सुनकर नारद मुनि ने कुमारको इशारा किया। कुमार ने सारी सेना को लीला मात्र से उठा दिया। सब जीते जागते खड़े होगए और कुमार से अति स्नेहपूर्वक मिले।

कुमार ने समुद्र विजय तथा बलभद्र आदि गुरु जनोंको मस्तक नमाकर प्रणाम किया और अगणित राजाओं को हृदय से लगाकर तथा कुशल प्रश्न पूछकर संतुष्ट किया। भानुकुमार को छोड़कर सम्पूर्ण बंधुजनों को अपार हर्ष हुआ।

इस मेल मिलाप के पश्चात् कृष्ण जी ने कुमारसे कहा बेटा! जाओ अपनी माता को ले आओ। कुमार ने नीचा सिर कर लिया। तब नारदजी बोले, सच है संसार में अपनी अपनी स्त्री सबको प्यारी होती है। कृष्ण जी! आपने इस प्रकार क्यों नहीं कहा कि अपनी माता और स्त्री को लेआओ। इस के उत्तर में कृष्ण जी ने कहा, महाराज, मुझे क्या खबर कि इसे बहू भी प्राप्त होगई है, कहिए तो इसे बहू कहांसे मिली। तब नारद जी ने उदधिकुमारी के हरण के समाचार सुनाए जिस से कृष्ण जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले, बेटा! जाओ अपनी माता और स्त्री को ले आओ। कुमार ने पिता की आज्ञा पाकर विमानको नीचे उतारा। सब एक दूसरे से मिल

कर संतुष्ट हुए और नगर में चलने के लिए तैय्यारी करने लगे। नाना प्रकार की शोभा की गई, शहर सजाया गया। कृष्ण जी के साथ कुमार ने नगर में प्रवेश किया। कुमारको देखकर सब कोई आनंद में मग्न हो रहे थे पर सत्यभामा के महल में आज रोनाही पड़रहा था।

❋ सत्ताईसवां परिच्छेद ❋

इस प्रकार कितने ही दिन आनंद में बीतगए। एक दिन कृष्ण जी ने अपने मंत्रियों से कहा कि अब प्रद्युम्न का विवाह करना उचित है। कुमार ने विनय पूर्वक निवेदन किया कि महाराज मेरा विवाह महाराजा कालसंवर तथा महारानी कनकमाला के समक्ष होगा। वास्तव में मेरे वेही पोषक व रक्षक हैं। यह सुनते ही कृष्ण जी ने दूत भेजकर कालसंवर तथा रानी कनकमाला को बड़े आदर सत्कार पूर्वक बुलाभेजा और बड़ी सजधज के साथ उनका स्वागत किया। विद्याधरों सेही प्रद्युम्न का रति तथा उदधिकुमारी आदि पांच सौ आठ कन्याओं से पाणिग्रहण कराया, तत्पश्चात् बड़े समारोह के साथ उनका नगरी में प्रवेश कराया।

बहुत दिनों तक राजा कालसंवर द्वारिका में कृष्ण जी के अतिथि रहे। एक दिन उन्हों ने अपने देश जाने की

अभिलाषा प्रगट की। कृष्णजी ने कनकमाला को नाना भांति के बहु मूल्य वस्त्राभरण देकर और बड़ा आभार प्रगट कर के उन को विदा किया। प्रद्युम्न मोह वशात बहुत दूर तक उन के साथ गया, फिर उन के चरणकमलों को नमस्कार करके तथा अपनी विनय से इन्हें संतुष्ट करके द्वारिका को लौट आया। नारदजी भी विवाह कार्य के पश्चात् अपने इच्छित स्थान को चले गए।

अनंतर पिता की भक्ति के भार से नम्र, सुख-सागर के मध्य में विराजमान देवों द्वारा सेवनीय, देवपूजा, गुरु पूजादि षटकर्मों में तत्पर काम कुमार ने सुख ही सुख में बहुत समय व्यतीत कर दिया। सारी पृथ्वी में उसकी कीर्ति फैल गई, जहां तहां उसी की कथा सुनाई देने लगी। यह सब पूर्वोपार्जित पुण्य ही की महिमा है।

❁ अट्ठाईसवां परिच्छेद ❁

वास्तव में पुण्य बड़ा प्रबल है। पुण्य से सर्वत्र इष्ट संयोग तथा अनिष्ट वियोग होता रहता है। पुण्य के महात्म्य से ही प्रद्युम्न के पूर्वभव के छोटे भाई कैटभ का जीव जो सोलहवें स्वर्ग में इंद्र पदवी के अकथनीय सुख भोग रहा था, श्री जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि

से यह सुन कर कि तू प्रद्युम्न का इस जन्म मेंही भाई होगा, कृष्ण महाराज की सभा में आया और एक रत्नमई हार देकर अपने आगमन की सूचना देगया। कृष्ण जी ने यह विचार कर कि सत्यभामा और प्रद्युम्न कुमार का बिगाड़ रहता है अतएव इसे सत्यभामा के गर्भ में अवतरण करना चाहिए, जिस से इन में प्रीति होजाय, सत्यभामा को अमुक दिन, अमुक स्थान में आने के लिए कहा। दैव योग से कुमार को भी यह बात मालूम होगई, उसने रुक्मणि माता की आज्ञानुसार जाम्वती रानी को जिस से महाराज रुष्ट रहते थे रूप बदलने वाली अंगूठी देकर और सत्यभामा का रूप धारण करा के नियत तिथि पर नियत स्थान में महाराज के पास भेज दिया। महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से उसे सत्यभामा समझ कर उसके साथ भोग किया और उक्त दैव द्वारा दिया हुआ हार उसे दे दिया।

पुण्य के उदय से कैटभ का जीव स्वर्ग से चय कर उसके गर्भ में स्थित होगया। जाम्वती ने तब अंगूठी उतार ली और असली रूप में आगई जिसे देख कर महाराज को बड़ा आश्चर्य हुआ।

थोड़ी देर में असली सत्यभामा भी आ पहुँची और उस के गर्भ में भी स्वर्ग से चय कर कोई दैव आगया।

दोनों के गर्भ वृद्धिगत होनेलगे और दोनों के शंभुकुमार और सुभानुकुमार पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों कुमार दोयज के चंद्रमा के समान दिनों दिन बढ़ने लगे और दोनों की शिक्षा, रक्षा का भी प्रबंध होगया। प्रद्युम्न अपने भाई शम्भुकुमार को और भानुकुमार अपने भाई सुभानुकुमार को अपनी विद्या, कला, कौशलादि सिखाने लगे।

एक दिन ये दोनों भाई खेलते २ राज सभा में पहुंच गए। बलदेव जी पांडवों के साथ जुआ खेल रहे थे। उन्होंने इन दोनों भाइयों को भी खेलने के लिए कहा। ये आज्ञा पाकर खेलने लगे, निदान प्रद्युम्न की सहायता से और उस की माया तथा विद्या के बल से शम्भुकुमार ने भानुकुमार तथा उसकी माता सत्यभामा का सारा धन जीत लिया और याचकों को बांट दिया जिस से सत्यभामा का बड़ा मान गलित हुआ।

और भी कई बार कुमार ने सत्यभामा का खूब ही तिरस्कार किया। एक बार जब कृष्ण जीने रुष्ट होकर शम्भुकुमार को निकाल दिया था और कहा था कि यदि सत्यभामा हथिनी पर बैठ कर इस के सम्मुख जावे और भक्ति पूर्वक उत्सव के साथ इसे लेआवे तो उस समय भले ही यह मेरे नगर में आ सकता है अन्यथा नहीं तब प्रद्युम्न ने अपनी माया से शम्भु-

कुंमार को एक रूपवती युवती का रूप धारण करा के सत्यभामा के बगीचे में बिठा दिया। सत्यभामा बड़े आदर सत्कार से उसें सुभानुकुमार के साथ विवाह देने के अभिप्राय से अपने घर ले आई पर जब पाणिग्रहण का ठीक समय आया तो उसने सिंह का रूप धारण करके सुभानुकुमार को पंजे के आघात से ऐसा पटका कि उसे मूर्छा आगई। फिर शम्भुकुमार ने अपना असली रूप धारण कर लिया। इस घटना से सत्यभामा बड़ी लज्जित हुई।

प्रद्युम्नकुमार ने अपनी कामवती स्त्रियों के साथ बहुत से धन वैभव और भाई बंधुओं का सुख उपभोग किया। संसार के समस्त सार भूत पदार्थ उसे प्राप्त हो गए। पुनः पुनः कहना पड़ता है कि यह सब पुण्य का फल है। पुण्यात्मा जीव के आगे समस्त भोग, उपभोग के पदार्थ हाथ बांधे खड़े रहते हैं।

❀ उनतीसवां परिच्छेद ❀

इसी बीच में श्रीनेमिनाथ भगवान ने इस असार क्षण भंगुरसंसार से मोह तोड़ कर और इस जगत जंजाल से स्नेह छोड़कर जिन दीक्षा-लेली और अनेक व्रत उपवासादि तथा ज्ञान ध्यान तपोबल से केवल ज्ञान लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया।

उनके साथ अनेक श्रावक, श्राविकाओं ने भी दीक्षा लेली। सैकड़ों ने व्रत धारण किए और हज़ारों ने प्रतिज्ञाएं लीं और परम भट्टारक श्रीतीर्थंकर भगवान नेमिनाथ स्वामी के मुखारविंद से यह सुनकर कि यह द्वारिका नगरी १२ वर्ष के पश्चात् द्वीपायन मुनि के कोप से नष्ट होजाएगी, और जरत्कुमार के बाण से कृष्ण जी की मृत्यु होगी, अनेक द्वारिका निवासी तथा यादव गण भी वैरागी होकर सर्वज्ञ देवकी शरण को प्राप्त होगए।

प्रद्युम्न कुमार ने भी अनेक सांसारिक सुख भोग कर जान लिया कि निश्चय से यह संसार असार है, अनित्य है, अशरण है, इस में कोई भी वस्तु शास्वत अर्थात् सदैव रहने वाली नहीं है। केवल जिन दीक्षा ही कल्याणकारी है, इसी से भव २ के दुःख नाश होते हैं, और जन्म, जरा मृत्यु के संकट कटते हैं।

ऐसा विचार कर के एक दिन कुमार श्रीकृष्ण महाराज की सभा में गया और अवसर पाकर कहने लगा, हे पिता, मैंने इस संसार के बहुत कुछ सुख भोग लिए, मेरी इन से तृप्ति होगई, अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं मोक्ष पद प्राप्त करने का उपाय करूं, अर्थात् संसार भ्रमण से मुक्त करने वाली जिनेंद्र भगवान की दीक्षा धारण करूं।

कुमार के मुख से ऐसे वचन सुनते ही कृष्ण नारायण

तथा अन्य समस्त उपस्थित गण बोल उठे, हा बेटा, प्रद्युम्न कुमार तुम ने इस युवावस्था में क्या विचार किया। यह संयम का समय नहीं है, यह अवस्था भोग भोगने की है न कि दीक्षा लेने की। इस के सिवाय जिनेन्द्र भगवान ने जो कहा है उसे कौन जानता है कि होगा या नहीं, फिर व्यर्थ क्यों भयभीत होरहा है।

अपने दुःखित पिता को मोह के वश में जानकर प्रद्युम्न कुमार बोला, हे पूज्य पुरुषो! केवली भगवान के वचन कदापि असत्य नहीं होसकते, मुझे उनपर पूरा विश्वास है। मुझे भय किसका, अपने बांधेहुए कर्मों के सिवाय और डर ही किसका होसकता है। संसार में न कोई किसी का बंधु है और न कोई शत्रु है, न कोई किसी का कुछ लेसकता है और न कोई किसी को कुछ दे सकता है। इस असार संसार में जीव अनादि निधन हैं, अगणित भवों में इस के अगणित बंधु हुए हैं। फिर बतलाओ किसके साथ स्नेह कियाजाए।

मुझे आश्चर्य है कि आप जैसे विद्वान् भी शोक करते हैं। आप क्या शोक करते हैं, आप तो दूसरों को उपदेश देने वाले हैं। क्या आप नहीं जानते कि मृत्यु आयु के क्षीण होजाने पर सब जीवों को भक्षणकर जाती है। क्या राजा क्या रंक, क्या धनी क्या निर्धन, क्या विद्वान् क्या मूर्ख, क्या युवा

क्या वृद्ध किसी को भी नहीं छोड़ती। फिर मैं जवान हूं, अभी भोग भोगने योग्य हूं, इसलिए क्या मौत मुझे छोड़ देगी। यदि ऐसा है तो बतलाइये आदिनाथ भगवान के भरत चक्रवर्ती तथा आदित्य कीर्ति आदि प्रतापी पुत्र कहां गए। राम कहां गए, लक्ष्मण कहां गए, गजकुमार कहां गए, जयकुमार कहां गए और बलवान बाहुबली भी कहां गए।

इस प्रकार वैराग्य उत्पन्न करने वाले प्रिय वचनों से पिता को समझाकर और शम्भुकुमार को अपने पद पर स्थापित कर के कुमार माता के महल में गया और माता से भी आज्ञा के लिए प्रार्थना की। माता इन शब्दों को सुनते ही पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ी। उसे अपने तन बदन की कुछ सुधि न रही। वास्तव में माता का प्रेम उत्कृष्ट और निस्वार्थ प्रेम होता है। परंतु थोड़ी देर में सचेत होने पर कुमार उसे भी संसार का स्वरूप समझाने लगा और कहने लगा, माता! बुद्धिमानों को शोक करना उचित नहीं, तू निश्चय जानती है कि जब तक मोह है तभी तक बंधन है। जन्म के पीछे मरण लगा हुआ है, यौवन के पीछे बुढ़ापा है और सुख के पीछे दुःख लगा हुआ है। इंद्रियों के विषय भोग विष के समान दुःख दाई हैं। अतएव माता मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिए

पुत्र के ऐसे वचन सुनकर रुक्मणी का मोह दूर होगया। वह संसार की अनित्यता तथा असारता भलीभांति समझ गई और कहने लगी, हां बेटा मैं मोह के वश अंधी हो रही थी, तूने मुझे प्रतिबोधित किया, तू मेरा सच्चा गुरु है। मैं भी अब मोह और स्नेह को छोड़कर तपोवन में प्रवेश करती हूं।

फिर कुमार अपनी स्त्रियों की तरफ़ देखकर उनकोभी समझाने लगा जिसे सुन कर सबकी सब दुःख से व्याकुल होगई, पर थोड़ी देर में कहने लगीं कि जब हमने आप के साथ बहुत भोग भोगे तब आप के ही साथ दीक्षा लेकर पवित्र तप भी करेंगी। आप सहर्ष कर्मों के क्षय के लिये जिन दीक्षा ग्रहण करें।

इस प्रकार शांतिता और वैराग्य के वचन सुनकर कुमार बहुत संतुष्ट हुआ। उस ने अपनी स्त्रियों से छुटकारा पाकर उसी समय समझ लिया कि बस अब मैं संसार रूपी पिंजरे से निकल आया। फिर क्या था, हस्ती पर आरूढ़ होकर घर से निकल पड़ा और लोगों के जय हो, जय हो, आदि आशीर्वाद रूप वचन सुनते हुए गिरनार पर्वत पर पहुंचा। वहांपर उस ने भगवान का समवसरण देखा। आँगन के पास पहुंचते ही हाथी पर से उतर कर राज्य विभव तथा छत्र चंवरादि को त्याग दिया, और विद्याओं तथा १६ लाभों को स्त्रियों

के समान छोड़ दिया और छोड़ते समय उनसे क्षमा मांगली। पश्चात् समस्त इष्ट जनों से क्षमा मांग कर समवसरण में प्रवेश किया। भगवान को नमस्कार करके बोला, हे जगतरक्षक, करुणासागर जिनेन्द्र भगवान, कृपा करके मुझे जिन दीक्षा दीजिए। यह कहकर कुमारने जो कुछ वस्त्राभरण पहिन रक्खे थे वे भी सब उतार दिए। पांच मुष्टियों से अपने सिर के केश उखाड़कर फेंक दिए और समस्त सावद्य योग के उत्पन्न करने वाले परिग्रह को छोड़कर बहुत से राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा लेली और संसार से अतिशय विरक्त होगए।

उसी समय भानुकुमार तथा सत्यभामा, रुक्मणी आदि रानियों ने भी जिनदीक्षा लेली।

तीसवां परिच्छेद

अब कुमार व्रत धारण करके कठिन उत्कृष्ट तप करने लगा। सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र संयुक्त होकर देव, गुरु, शास्त्र की त्रिविध भक्ति करते हुए अनेक ऋद्धियां प्राप्त कीं। क्रोधादि कषायों को मंद किया, नाना प्रकार के संक्लेशों द्वारा शरीर कृश किया। बाह्य और आभ्यंतर सर्व परिग्रह को छोड़ दिया। शरीर से ऐसी निर्ममत्व बुद्धि होगई कि उसकी ओर किंचित् भी लक्ष्य नहीं दिया।

आर्त रौद्र ध्यान को सर्वथा त्याग दिया और धर्म, शुक्र ध्यानको आदरपूर्वक करने लगा। दशधर्मों का यथोचित पालन किया। प्रतिक्रमण वंदनादि षट आवश्यकों को विधिपूर्वक किया।

जो कामकुमार पहिले कभी फूलों की शय्या पर तकिये लगाकर सोते थे और किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं सहते थे, वेही अब साधुवृत्ति मे तृण पाषाण युक्त भूमि का सेवन करते हैं और शीत ऊष्णादि नाना प्रकार की परीषह सहन करते हैं। जो कामकुमार सोलह आभरण धारण करते थे, वेही अब द्वादशांग रूपी शृंगार से विभूषित ऐसे वीतरागी हो गए हैं कि उनके काम चेष्टा के अस्तित्व का लोग अनुमान भी नहीं करसकते। जो कामकुमार मदोन्मत्त अगणित सेना युक्त शत्रुओं का गर्व गलित करते थे, वेही अब दयावान और जितेंद्रिय हो कर षट काय के जीवों की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं, और संसारको अपने समान देखते हैं। पूर्व में जो प्रभुता के रस में छके हुए धन, धान्य, हाथी, घोड़े तथा स्वर्णादि से तृप्त नहीं होते थे वेही अब सब झगड़ों से मुक्त होकर और समस्त परिग्रहों को छोड़कर अंतरात्मा के रंग में रंगे हुए रहते हैं जिन को अपने शरीर से भी मोह नहीं।

तीन प्रकार की गुप्ति और पांच प्रकार की समितियों का पालन करते हुए वे धीर वीर योगीश्वर बारहवें दिन

गिरनार पर्वत के एक ध्यान योग्य वन में पहुंचे। वहां पर उन्होंने सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य से दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय किया। फिर उसी रमणीक वन में एक आम के वृक्ष के नीचे निर्मल शिला पर पर्यंकासन योग से विराजमान होकर और चित्त का निरोध करके तथा दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में लगा करके आत्मस्वरूप में तल्लीन होगए।

फिर क्रम २ से जैसे २ कर्म शुद्धि होती गई वैसे २ प्रमत्तादि गुणस्थानों से निकलकर ऊपर चढ़ने लगे। आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान को उल्लंघन करके नौवें अनिवृत्त करण में स्थिर हुए। यहां अनेक प्रकृतियों का घात किया, सूक्ष्म साम्पाय गुणस्थान में संज्वलन लोभ प्रकृति का नाश किया और बारहवें क्षीण कषाय गुणस्थान में सम्पूर्ण घातिया कर्मों का नाश किया। इसके अनंतर तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश करके, अविनाशी लोकाकाश प्रकाशक, केवल ज्ञानको प्राप्त किया।

केवलज्ञान के प्राप्त होते ही छत्र, चंवर, सिंहासन ये ३ दिव्य वस्तुएं देवकृत प्राप्त हुईं और इंद्रकी आज्ञा पाकर कुबेर ने बड़ी भक्ति से ज्ञान कल्याणक के लिए एक गंधकुटी की रचना की।

प्रद्युम्नकुमार को केवलज्ञान प्राप्त हुआ जानकर चारों प्रकार के देव तथा अनेक विद्याधर और भूमिगोचरी राजा भक्ति और प्रेम

से भरे हुए आए और प्रणाम करके आनंद के साथ अष्ट द्रव्यों से पूजा करने लगी। उपस्थित गण को धर्मोपदेश देकर योगी राज प्रद्युम्नकुमार श्रीनेमिनाथ भगवान के साथ विहार के लिए चल दिये और पृथ्वीतल में बहुत दिन तक विहार करके और भव्य जीवों को प्रतिबोधित करके तथा जिन धर्म का प्रकाश करके फिर गिरनार पर्वत पर गए। वहां एक शिला पर विराजमान होगए और पर्यंकासन योग से चार अघातिया कर्मों और उनकी प्रकृतियों को नष्ट करके जन्म जरा मृत्यु रहित गौरव को प्राप्त हुए। उनके साथ शम्भुकुमार भानुकुमार, और अनुरुद्धकुमार भी मोक्ष को गए। गिरनार पर्वत पर इन तीनों के शिखर बने हुए हैं। कहते हैं कि वहां से ही इन्हों ने निर्वाण पद प्राप्त किया और इसी महात्म से गिरनार पूज्य है।

जहां २ से ये मुक्त हुए थे वहां २ पर इंद्रादि देवों ने आकर उनके बचे हुए शरीर को (नख केशादि को) पवित्र चंदन से दग्ध किया और सर्व देवगण बड़े हर्ष और भक्ति से शिखरों की पूजन करके अतुल्य विभूति के साथ अपने २ स्थान को लौट गए।
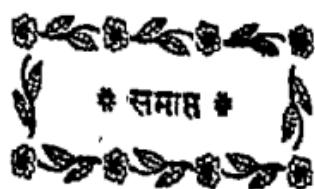
शुद्धि अशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध		शुद्ध
७	१४	रुकमणि	...	रुकमणी
"	१६	"	...	"
८	११	करेंगी	...	करेगी
१०	१२	उमंड़	...	उमड़
११	१३	स	...	से
१२	१६	घष्ठ	...	षष्ठ
१६	७	कृष्ण	...	कृष्ण
१८	१५	करक	...	करके
"	२०	करढूं	...	करदूं
२७	१६	प्रेर्णा	...	प्रेरणा
२६	१४	उस	...	उसे
३२	१	करक	...	करके
३५	१७	म	...	मैं
"	१८	कैं	...	कर
३६	२	क	...	के
४६	१६	अत	...	अंत
४८	१६	ह	...	हैं
५४	११	विज्ञम्म	...	विज्ञम्भ
५५	६	पड़ा	...	बड़ा
६५	७	रुकणी	...	रुकमणी
"	११	एकान्त	...	एकान्त
७१	६	म	...	मैं
७६	१७	सौन्दर्य	...	सौन्दर्य
८०	८	रुकमणि	...	रुकमणी

❋ उत्तम पुस्तकें ❋

१.	वालबोध जैन धर्म पहिला भाग	....	)॥
२.	,, ,, दूसरा ,,	....	-)
३.	,, ,, तीसरा ,,	....	=)
४.	,, ,, चौथा ,,	....	।-)
५.	तत्वमाला	....	।)
६.	वारह भावना	....	।=)
७.	वाल गणित	....	≡)
८.	क्या ईश्वर जगतकर्त्ता है ?	....	)॥
९.	अहिंसा, उर्दू, हिंदी	....	)।
१०.	इंसानी ग़िज़ा उर्दू	....	-)
११.	तरदीद गोश्त ,, ...	....	-)
१२.	स्त्री-शिक्षा ,, ...	....	-)

पता—दयाचन्द्र जैन, बी. ए.

नं० ६६. लाटश रोड-लखनऊ.